श्रीमद्गोस्वामि

तुलसीदासकृत रामायण

सुन्दरकाण्ड ५.




सुंदरकाण्ड

श्रीः

गोस्वामी

तुलसीदासकृत रामायण

सुन्दरकाण्ड

(संतजीवनी टीका सहित)

मङ्गलाचरण

श्लोक—शान्तंशाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाण[1] शान्तिप्रदम् ।
ब्रह्माशंभु फणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्य विभुम् ॥
रामाख्यंजगदीश्वरंसुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं ।
वन्देहंकरुणाकरं रघुवरं भूपाल चूड़ामणिम् ॥

शान्ति युक्त नित्य (सदा रहनेवाले) प्रत्यक्षआदि प्रमाणों से नहीं जानने योग्य, निर्दोष मुक्ति के द्वारा शान्ति के देनेवाले, ब्रह्मा शिव और शेषजी करके सेवित, निरन्तर वेदान्त (उपनिषद आदि सद्ग्रन्थों) से जानने योग्य, सर्वव्यापक ब्रह्म अथवा अत्यन्त समर्थ; देवताओं के गुरु अथवा देवताओं में प्रधान, माया से मनुष्यरूपधारी, कृपानिधान, रघुवंश में श्रेष्ठ, राजाओं के शिरोमणि राम नाम धारी जगत् के ईश्वर हरि भगवान् नारायण को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

श्लोक—नान्यास्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये । अभिलाषा।
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ॥
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे ।
कामादिदोषरहितं कुरुमानसं च ॥ २ ॥

हे रघुनाथजी ! मैं सच कहता हूँ कि मेरे हृदय में और कोई अभिलाषा नहीं

---

१. 'गावांणशान्तिप्रदम्' ऐसा भी पाठ है अर्थात देवताओं को शान्ति देनेवाले ।

है और आप तो सबके अन्तर्यामी ही हैं अर्थात् घट घट की जानते हैं रघुवंश में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी ! मुझे अपनी पूर्ण भक्ति दीजिये, और मेरे मनको काम क्रोध आदि दोषों से रहित कीजिये ॥ २ ॥

श्लोक—अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ॥
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं ।
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥ ३ ॥

अतुलबल के स्थान अर्थात् अत्यन्त बलवान, सुमेरु पर्वतके समान देदीप्यमान दिव्य देह वाले, राक्षसरूपी वन को भस्म करने के लिये अग्नि के समान, ज्ञानियों में आगे गिने जाने वाले, सम्पूर्ण गुणों की खान, वानरों के स्वामी, रामचन्द्रजीके श्रेष्ठ दूत पवन के पुत्र ऐसे श्रीहनुमान्जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

जामवन्त के वचन सुहाये ❀ सुनि हनुमान हृदय अति भाये ॥१॥
तब लगि मोहिं परखियहु भाई ❀ सहि दुःख कन्द मूल फल खाई ॥२॥

किष्किंधाकांड के अन्त में हनुमान जी के प्रश्न के उत्तर में जामवन्तजी ने जो शिक्षा युक्त वचन कहे थे वे सुहावने वचन सुन कर हनुमान्जी के मन को बहुत प्यारे लगे अर्थात् हनुमानजी बहुत प्रसन्न हुये ॥१॥ और बोले हे भाइयों ! तुम सब साथी दुःख सह कर और कंद मूल फल खाकर तब तक मेरी राह देखना ॥ २ ॥

जब लगि आवौं सीतहि देखी ❀ होइ काज मन हर्ष बिशेखी ॥३॥
अस कहि नाइ सबन कहँ माथा ❀ चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा ॥४॥

जब तक मैं सीताजीको देख कर लौट आऊँ कार्य अवश्य सिद्ध होगा क्योंकि मेरे मन में विशेष आनन्द हो रहा है ॥ ३ ॥ इस प्रकार कह कर सुग्रीव, जामवन्त आदि सब साथियों को मस्तक नवा प्रसन्नता पूर्वक रामचन्द्रजी का हृदय में ध्यान धर कर हनुमानजी चले ॥ ४ ॥

सिंधुतीर इक सुंदर भूधर ❀ कौतुक कूदि चढ़े तेहि ऊपर ॥५॥
बार बार रघुबीर सँभारी ❀ तरकेउ पवन तनय बलभारी ॥६॥

समुद्रके तट पर एक सुन्दर पर्वत था उसके ऊपर खेलसा कूदकर हनुमानजी चढ़ गये ॥५॥ पर्वत पर चढ़ कर पवनके पुत्र महा बलवान् हनुमान्जीने बारंबार रामचन्द्रजी का स्मरण कर गर्जना की और छलांग भरी अर्थात् उस पर से उछल कर बढ़े ॥६॥

जेहि गिरि चरण देइ हनुमन्ता ❀ सो चलि गयउ पताल तुरन्ता ॥७॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना ❀ ताहि भाँति चला हनुमाना ॥८॥

जल निधि रघुपति दूत विचारी ❀ कह मैनाक़ होउ श्रम हारी ॥९॥

जिस पर्वत पर पाँव रख कर हनुमान्‌जी कूदे वह तुरन्त पाताल में चला गया ॥ ७ ॥ जिस प्रकार रामचन्द्रजीका अमोघ बाण छूटता है उसी प्रकार हनुमान्‌जी चले । रामचन्द्रजी का अमोघ बाण तीन प्रकार का है । एक यह कि कार्य सिद्ध करके लौटता है, दूसरे इच्छा के अनुसार वेग से जाता है, तीसरे उसकी गति को कोई नहीं रोक सकता ॥ ८ ॥ समुद्र ने हनुमानजी को रामचन्द्रजी का दूत जान कर कहा, हे मैनाक ! तुम इनकी थकावट को दूर करनेवाले बन जाओ अर्थात् सहायक हो जाओ ॥ ९ ॥

सोरठा—सिन्धु बचन सुनि कान, तुरत उठेउ मैनाक तब ।
कपि कहँ कीन्ह प्रणाम, बार बार कर जोरि कै ॥ १ ॥

समुद्र का बचन कानों से सुना तब मैनाक पर्वत उठा और बारम्बार हाथ जोड़ कर हनुमान्‌जी को प्रणाम किया ॥ १ ॥

दोहा—हनूमान् तेहि परसि कर, पुनि तेहि कीन्ह प्रणाम ।
राम काज कीन्हे बिना, मोहिं कहाँ विश्राम ॥ १ ॥

हनुमान्‌जी ने उसे हाथ से छू कर फिर उसको प्रणाम किया और कहने लगे कि रामचन्द्रजी का कार्य किये बिना मुझे विश्राम कहाँ है ॥ १ ॥

जात पवन सुत देवन देखा ❀ जाना चह बल बुद्धि बिशेखा ॥१॥
सुरसा नाम अहिन की माता ❀ पठयउ आइ कही तेहि बाता ॥२॥

हनुमान्‌जी को जाते हुए देवताओं ने देखा और उनके विशेष बल और बुद्धि को देखना चाहा ॥ १ ॥ तब सुरसा नामवाली साँपों की माता को भेजा उसने हनुमान्‌जी के पास आकर यह बात कही ॥ २ ॥

आजु सुरन मोहिं दीन्ह अहारा ❀ सुनि हँसि बोला पवन कुमारा ॥३॥
राम काज करि फिरि मैं आवौं ❀ सीता की सुधि प्रभुहि सुनावौं ॥४॥

आज तो देवताओं ने मुझे अच्छा भोजन दिया; यह सुन हनुमान्‌जी हँस कर बोले ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीका कार्य कर मैं लौटकर आऊँ और सीताजी की खबर प्रभु (रामचन्द्रजी) को सुनाऊँ ॥ ४ ॥

तब तुव बदन पैठिहौं आई ❀ सत्य कहौं मोहिं जान दे माई ॥५॥
कवनिहु यतन देइ नहिं जाना ❀ ग्रससि न मोहिं कहा हनुमाना ॥६॥

तब आकर तुम्हारे मुख में पैठूँगा, हे माता ! मैं यह बात सच कहता हूँ मुझे जाने दो ॥ ५ ॥ किसी भी उपाय से जाने नहीं देती तब हनुमानजी ने कहा कि

मुझे खा क्यों नहीं लेती ॥ ६ ॥

योजन भरि तेहि बदन पसारा ॥ कपि तनु कीन्ह द्विगुण विस्तारा ॥७॥
सोरह योजन मुख तेइ ठयऊ ॥ तुरत पवन सुत बत्तिस भयऊ ॥८॥

यह सुनते ही उस सुरसा ने योजन भर (चार कोस तक) मुँह फैलाया तब हनुमान्‌जी ने अपने शरीर को दूना (आठ कोस तक) बढ़ा दिया ॥ ७ ॥ फिर सुरसा नें सोरह योजन (६४ कोस तक) अपना मुँह बढ़ाया तब तुरन्त हनुमान्‌जी बत्तिस योजन (१२८ कोस) के हो गये ॥ ८ ॥

जस जस सुरसा बदन बढ़ावा ॥ तासु द्विगुण कपि रूप दिखावा ॥९॥
शत योजन तेइ आनन कीन्हा ॥ अति लघुरूप पवन सुत लीन्हा ॥१०॥

सुरसा ने जितना जितना अपना बदन बढ़ाया उससे दूना रूप हनुमान्‌जी ने दिखाया ॥ ९ ॥ जब सुरसा ने सौ योजन (४०० कोस) का अपना मुख कर लिया तब हनुमान्‌जी ने बहुत छोटा सा रूप धारण कर लिया ॥ १० ॥

बदन पैठि पुनि बाहर आवा ॥ माँगी विदा ताहि शिर नावा ॥११॥
मोहिं सुरन जेहि लागि पठावा ॥ बुधि बल मर्म तोर मैं पावा ॥१२॥

और सुरसा के मुख में घुस गये फिर बाहर आये और सिर नवा कर विदा माँगी ॥ ११ ॥ तब सुरसा बोली मुझे देवताओं ने जिस लिये भेजा था सो मैंने तुम्हारी बुद्धि और बल का भेद जान लिया ॥ १२ ॥

दोहा--राम काज सब करिहहु, तुम बल बुद्धि निधान ।
आशिष दै सुरसा चली, हर्षि चले हनुमान् ॥ २ ॥

तुम बड़े बलवान् और बुद्धिमान् हो रामचन्द्रजी के सब कार्य सिद्ध करोगे यह आशीर्वाद देकर सुरसा चली गई तब हनुमान्‌जी भी प्रसन्न होकर आगे चले ॥ २ ॥

निशिचरि एक सिन्धु महँ रहई ॥ करि माया नभ के खग गहई ॥३॥
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं ॥ जल विलोकि तिनकी परछाहीं ॥४॥

सिंहिका नामवाली एक राक्षसी समुद्र में रहती थी वह माया (कपट) करके आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी ॥ ३ ॥ जो जीवजन्तु आकाश में उड़ने लगते तो उनकी परछाहीं जल में देख कर ॥ ४ ॥

गहै छाँह सक सो न उड़ाई ॥ इहि विधि सदा गगन चर खाई ॥३॥
सोइ छल हनूमान ते कीन्हा ॥ तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा ॥४॥
ताहि मारि मारुत सुत बीरा ॥ वारिधि पार गयउ मति धीरा ॥५॥

उस छाया को पकड़ लेती थी तब वह आकाशचारी जीव उड़ नहीं सकता था

इस प्रकार से वह सदैव आकाशचारियों को खाया करती थी ॥ ३ ॥ वही कपट हनुमान्‌जी से भी किया। उसके कपट को हनुमान्‌जी ने तुरन्त पहिचान लिया ॥४॥ और उसे मार कर पवन के पुत्र मति धीर महावीरजी समुद्र पार जा पहुँचे ॥ ५ ॥

तहाँ जाय देखी बन शोभा ॥ गुञ्जत चंचरीक मधु लोभा ॥६॥
नाना तरु फल फूल सुहाये ॥ खग मृग वृन्द देखि मन भाये ॥७॥

वहाँ पहुँचकर बन की शोभा देखी जहाँ शहद के लोभ से भौंरे गुन्जार रहे हैं ॥ ६ ॥ नाना प्रकार के वृक्ष फल और फूलों से सुहावने हो रहे पक्षी और मृग आदि पशुओं के झुण्ड विचर रहे सो देखकर हनुमान्‌जी को बहुत प्यारे लगे ॥ ॥

शैल विशाल देखि इक आगे ॥ तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे ॥८॥
उमा न कछु कपि की अधिकाई ॥ प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥९॥

आगे चल कर एक बड़ा भारी पर्वत देख उस पर बेधड़क हनुमान्‌जी कूदकर चढ़ गये ॥ ८ ॥ महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! इसमें कुछ हनुमान्‌जी की बड़ाई नहीं यह प्रभु रामचन्द्रजी का प्रताप है जो काल को भी खा लेता है ॥ ९ ॥

गिरि पर चढ़ि लंका कपि देखी ॥ कहि न जाय अति दुर्ग विशेखी ॥१०॥
अति उतंग जल निधि चहुँपासा ॥ कनक कोट कर परम प्रकासा ॥११॥

उस पर्वत की चोटी पर चढ़ कर हनुमान्‌जी ने लंका देखी उसके बहुत बड़े किले का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १० ॥ बहुतही ऊँचो वह लंका जिसके चारो ओर समुद्र भरा हुआ है सोने के किले के कँगूरे बहुत ही चमकीले हैं ॥ ११ ॥

छन्द-(कनक कोट विचित्र मणि कृत सुन्दरायत अति घना।
चौहट्ट हाट सुहट्ट बीथी चारु पुर बहु बिधि बना ॥
गज बाजि खच्चर निकर पद चर रथ बरूथनि को गने।
बहु रूप निशिचर यूथ अति बल सेन बरणत नहिं बनै ॥१॥

सोने का कोट (किला) रंग बिरंगी मणियों से जड़ा हुआ बहुत सुन्दर लंबा चौड़ा बना हुआ है। चौराहे चौक बाजार, अच्छी सड़कों और गलियों से सुशोभित नगर बहुत उत्तम रीति से बसा हुआ है, और हाथी घोड़े खच्चर इनके झुण्ड तथा पैदल और अगणित रथों को कौन गिन सकता है, एवं बहुत प्रकार के रूपवाले महा बली राक्षसों की सेना का वर्णन करते नहीं बनता ॥ १ ॥

छन्द—बन बाग उपवन वाटिका सर कूप वापी सोहहीं।
नर नाग सुर गन्धर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं ॥
कहुँ मल्ल देह विशाल शैल समान अति बल गर्जहीं।

नाना अखारन भिरहिं बहु बिधि एक एक न तर्जहीं ॥२॥

बन, बाग, बागीचे, फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ, और बावली शोभायमान हैं, मनुष्य, नाग, देव और गन्धर्व कन्यायें अपनी रूप माधुरीसे मुनियोंके चित्तको मोहित कर रहे हैं, कहीं पर्वत के समान बड़े देह वाले महाबलवान् मल्ल गरज रहे हैं, तथा अनेक अखाड़ोंमें बहुत भाँतिसे लड़ रहे हैं और एक दूसरेको पछाड़ रहे हैं ॥२॥

छन्द—करि यतन भट कोटिन विकट तनु नगर चहुँदिशि रक्षहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खग निशाचर भक्षहीं ॥
इहि लागि तुलसीदास इनकी कथा संक्षेपहि कही।
रघुवीर शर तीरथ सरित तनु त्यागि गति पैहैं सही ॥३॥

भयानक शरीर वाले योद्धाओंके दलके दल बड़ी सावधानीके साथ नगरके चारों ओर पहरा दे रहे हैं, कहीं राक्षसगण भैंसे, मनुष्य, गायें, गधे बकरे, और पक्षियोंको भक्षण कर रहे हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि इसीलिये मैंने इनकी कथा बहुत थोड़ी सी कही है क्योंकि ये भी रामचन्द्रजीके बाणरूपी तीर्थ की नदी में शरीर छोड़ कर अवश्य उत्तमगति (मोक्ष) पावेंगे ॥ ३ ॥

दोहा—पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह विचार।
अति लघुरूप धरौं निशि, नगर करौं पैसार ॥३॥

लंकापुरी में बहुत से पहरेदारों को देखकर हनुमान्‌जी ने अपने मन में विचार किया कि बहुत छोटा सा अपना रूप धारण कर रात्रि के समय इस नगर में प्रवेश करूँ तो ठीक है ॥३॥

मशक समान रूप कपि धरी ॐ लंका चले सुमिरि नर हरी ॥१॥
नाम लंकिनी एक निशिचरी ॐ सो कह चलेसि मोहिं निन्दरी ॥२॥

हनुमान्‌जी मच्छड़के बराबर रूप धारण कर मनुष्यों में नर हरी सिंह रूप रामचन्द्रजीका स्मरण करके लंकामें चले ॥१॥ वहाँ लंकिनी नामवाली एक राक्षसी थी वह कहने लगी, तू मुझे निदर कर कहाँ चला जाता है ॥ २ ॥

जानसि नाहिं मर्म शठ मोरा ॐ मोर अहार लंक कर चोरा ॥३॥
मुष्टिक एक ताहि कपि हनी ॐ रुधिर वमत धरणी ढनमनी ॥४॥

रे शठ ! क्या तू मेरा भेद नहीं जानता कि लंकाका चोरही मेरा आहार है ॥३॥ 'यह सुनते ही' हनुमान्‌जीने उसको एक घूँसा मारा जिससे वह लोहू वमन करती हुई धरती पर लुढ़क गई ॥ ४ ॥

पुनि संभारि उठी सो लंका ॐ जोरि पाणि कर विनय सशंका ॥५॥

जब रावणहिं ब्रह्म वर दीन्हा ॐ चलत विरंचि कहा मोहिं चीन्हा ॥६॥

फिर सम्हल कर वह लंकिनी उठी और हाथ जोड़ शंकासहित प्रार्थना करने लगी, शंका यह कि दूसरा घूँसा लग जायगा तो मेरे प्राण निकल जायँगे ॥ ५ ॥ वह बोली कि जब रावणको ब्रह्माजीने वरदान दिया था तब चलते समय उन्होंने मुझे यह लक्षण बतलाया था कि ॥ ६ ॥

विकल होसि जब कपि के मारे ॐ तब जानेसि निशिचर संहारे ॥७॥
तात मोर अति पुण्य बहूता ॐ देखेउँ नयन राम कर दूता ॥८॥

जब तू एक बन्दर की मार खानेसे विकल हो जायगी तब जान लेना कि अब राक्षसोंका संहार होनेवाला है ॥ ७ ॥ हे प्यारे! 'आज' मेरा बहुतही प्रबल पुण्य उदय हुआ है, जो मैंने अपने नेत्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीके दूतके दर्शन किये ॥ ८ ॥

दोहा—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥४॥

हे प्यारे! स्वर्ग और मोक्षका सुख एक ओर तराजूके पलड़े में रक्खा जाय और जो पल भरके सतसंगका सुख है वह दूसरे पलड़ेमें रक्खा जाय तो सब मिल कर के सत्संगके बराबर नहीं तुल सकते अर्थात् स्वर्ग सुख और मोक्ष सुख मिलकर लवमात्र के सत्संगके बराबर नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

प्रविशि नगर कीजे सब काजा ॐ हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥१॥
गरल सुधा रिपु करै मिताई ॐ गोपद सिंधु अनल शितलाई ॥२॥
गरुअ सुमेरु रेणु सम ताही ॐ राम कृपा करि चितवहिं जाही ॥३॥

हृदयमें कोशलाधीश रामचन्द्रजीका स्मरण कर नगरमें प्रवेश कीजिये और वहाँ जाकर सब कार्य कीजिये ॥ १ ॥ लंकिनी कहती है हे हनुमान्‌जी! उस 'भक्त' को विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता कर लेता है, समुद्र गौ के खुरके तुल्य होजाता है, आग ठंढी हो जाती है ॥२॥ भारी सुमेरु पर्वत उसको धूलके समान हो जाता है जिसको रामचन्द्रजी दयादृष्टि से देखते हैं ॥ ३ ॥

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना ॐ पैठेउ नगर सुमिरि भगवाना ॥४॥
मन्दिर मन्दिर प्रति करि शोधा ॐ देखे जहँ तहँ अगणित योधा ॥५॥

बहुत छोटा रूप धर कर हनुमान्‌जी भगवानका स्मरण कर नगरमें घुसे ॥ ४ ॥ घर घर प्रति खोजकी अर्थात्-हर एक घर ढूँढ़ा, उनमें जहाँ तहाँ अनगिनत योद्धाओं को उन्होंने देखा ॥ ५ ॥

गयउ दशानन मन्दिर माहीं ॐ अति विचित्र कहि जात सो नाहीं ॥६॥

शयन किये देखा कपि तेही ❀ मन्दिर महँ न दीख वैदेही ॥७॥

फिर रावणके मन्दिर में गये, वह राजमंदिर बहुतही विचित्र था, उसकी शोभा कही नहीं जा सकती ॥६॥ वहाँ हनुमान्‌जीने रावणको सोते देखा पर उस मन्दिरमें जानकीजी नहीं देख पड़ीं ॥ ७ ॥

भवन एक पुनि दीख सुहावा ❀ हरि मन्दिर तहँ भिन्न बनावा ॥८॥

फिर एक सुहावना मन्दिर देखा वहाँ हरि भगवान्‌का मन्दिर अलग बना हुआ था

दोहा-राम नाम अंकित सुगृह, शोभा वरणि न जाय।
नव तुलसी के वृन्द बहु, देखि हर्ष कपिराय ॥ ५ ॥

राम नाम लिखे हुए ऐसे उस सुन्दर मन्दिरकी शोभाका वर्णन नहीं किया जा सकता, वहाँ तुलसीके नवीन वृक्षोंके झुंडके झुंड देखकर हनुमान्‌जी बहुत प्रसन्न हुए

लंका निशिचर निकर निवासा ❀ यहाँ कहाँ सज्जन कर वासा ॥१॥
मनमहँ तर्क करन कपि लागे ❀ ताही समय विभीषण जागे ॥२॥

इस लंकापुरीमें तो राक्षस गणोंका निवास है, यहाँ सज्जनका वास कहाँ, इस प्रकार ॥१॥ हनुमान्‌जी अपने मनमें विचार करने लगे, उसी समय विभीषणजी जागे

राम नाम तेहि सुमिरन कीन्हा ❀ हृदय हर्ष कपि सज्जन चीन्हा ॥३॥
इहि सन हठि करिहौं पहिचानी ❀ साधुते होइ न कारज हानी ॥४॥

जागतेही विभीषणने राम नाम स्मरण किया सुनतेही हनुमान्‌जी बहुत प्रसन्न हुए और पहचान लिया कि ये सज्जन हैं ॥ ३ ॥ इनसे हठ करके पहचान करूँगा, साधुजन से कार्य की हानि नहीं होती है ॥ ४ ॥

विप्ररूप धरि वचन सुनावा ❀ सुनत विभीषण उठि तहँ आवा ॥५॥
करि प्रणाम पूछी कुशलाई ❀ विप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥६॥

ब्राह्मण का रूप धारण कर हनुमान्‌जी ने 'हरिभक्त की जय हो' यह वचन सुनाया, सुनतेही विभीषणजी उठ कर वहाँ आये ॥५॥ विभीषणजीने आतेही प्रणाम कर कुशल पूछा और कहा हे विप्र ! अपनी कथा समझा कर मुझसे कहिये ॥ ६ ॥

की तुम हरि दासन महँ कोई ❀ मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥७॥
की तुम राम चरण अनुरागी ❀ आयहु मोहिं करन बड़ भागी ॥८॥

क्या आप कोई हरिभक्तोंमें से है क्योंकि मेरे हृदयमें बहुत प्रीति उत्पन्न हो रही है ॥७॥ अथवा आप रामचन्द्रजीके चरणोंके प्रेमी हैं, जो मुझे बड़ भागी करने आये हैं

दोहा-तब हनुमन्त कही सब, राम कथा निज नाम।
सुनत युगल तन पुलक अति मगन सुमिरि गुण ग्राम ॥६॥

तब हनुमान्‌जी ने, श्रीरामचन्द्रजी की सब कथा कह सुनाई और अपना नाम भी बतलाया, सुनतेही दोनों के शरीर पुलकित हो गये और रामचन्द्रजीके गुण समूह स्मरण कर बहुत ही मगन हो गये ॥ ६ ॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी ॐ जिमि दशनन महँ जीभ विचारी ॥१॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा ॐ करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥२॥

हे पवनपुत्र हनुमान्‌जी ! सुनो यहाँ हमारा रहना ऐसा है जैसे दाँतोंमें विचारी जीभ रहती है ॥ १ ॥ हे तात ! मुझे अनाथ समझ कर श्री रामचन्द्रजी कभी मुझ पर कृपा करेंगे ॥ २ ॥

तामस तनु कछु साधन नाहीं ॐ प्रीति न पद-सरोज मन माहीं ॥३॥
अब मोहिं भा भरोस हनुमन्ता ॐ बिन हरिकृपा मिलहिं नहिं सन्ता ॥४॥

मेरा तमोगुणी (राक्षसी) शरीर है, साधन भी नहीं है, मन में रामचन्द्रजी के चरण कमलों से प्रीति भी नहीं है ॥ ३ ॥ परन्तु हे हनुमान्‌जी ! अब मुझे विश्वास हुआ कि हरि भगवान् की कृपा के बिना सन्तजन नहीं मिलते हैं॥४॥

जो रघुवीर अनुग्रह कीन्हा ॐ तौ तुम मोहिं दरश हठि दीन्हा ॥५॥
सुनहु विभीषण प्रभु की रीती ॐ करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥६॥

जब रामचन्द्रजी ने मुझपर कृपा की है इसीसे तो आपने हठ करके मुझको दर्शन दिये हैं ॥ ५ ॥ यह सुन हनुमान्‌जी बोले सुनो विभीषण ! प्रभु रामचन्द्रजी की यह रीति है कि अपने भक्त पर सदैव प्रीति करते हैं ॥ ६ ॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना ॐ कपि चंचल सबही विधि हीना ॥७॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा ॐ तादिन ताहि न मिलै अहारा ॥८॥

विभीषणजी के कथन के उत्तर में हनुमानजी उसी अनुसार कहते हैं कि हे विभीषण ! कहो मैं कौन बड़ा कुलीन हूँ. जाति का बन्दर चंचल, सबही प्रकार से हीन हूँ ॥७॥ यहाँ तक कि प्रातःसमय जो मेरा नाम लेवे तो उस दिन उसे भोजन नहीं मिले

दोहा—अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुण, भरे बिलोचन नीर ॥ ७ ॥

हे मित्र विभीषण ! सुनो ऐसा तो मैं अधम हूँ, ऐसे मुझपर भी रामचन्द्रजी ने कृपा की है सो रामचन्द्रजी के कृपालु होने के गुण को स्मरण कर दोनों की आँखों में आँसू भर आये ॥ ७ ॥

जानतहू अस स्वामि बिसारी ॐ ते नर काहे न होहिं दुखारी ॥१॥
यहि विधि कहत राम गुण ग्रामा ॐ पावा अवण सुखद विश्रामा ॥२॥

जो कोन जान बूझ कर ऐसे स्वामीको भूल जाते हैं वे मनुष्य क्यों न दुःखी होवें ॥१॥ इस भाँति रामचन्द्रजी के गुणों को कहते हुए दोनों ने कानों को सुख देने वाला विश्राम पाया अर्थात् सत्संग का परम आनन्द दोनों को प्राप्त हुआ ॥ २ ॥

पुनि सब कथा विभीषण कही ❀ जेहि विधि जनकसुता तहँ रही ॥३॥
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता ❀ देखा चहौं जानकी माता ॥४॥

फिर विभीषणजी ने वह सब कथा कही जिस भाँति वहाँ सीताजी रहती थीं ॥३॥ तब हनुमान्जी ने कहा सुनो भाई ! मैं माता जानकीजी को देखना चाहता हूँ ॥

युक्ति विभीषण सकल सुनाई ❀ चला पवनसुत बिदा कराई ॥५॥
धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहँवा ❀ वन अशोक सीता रह जहँवा ॥६॥

यह सुन विभीषणजी ने सब युक्ति सुनाई तब हनुमान्जी बिदा माँग कर वहाँ से चले ॥ फिर वही पहले जैसा बहुत छोटा रूप धर कर कर वहाँ गये जहाँ अशोक वन में सीताजी रहती थीं ॥ ६ ॥

देखि मनहिं मन कीन्ह प्रणामा ❀ बैठे बीति गई निशि यामा ॥७॥
कृश तनु शीश जटा इक वेणी ❀ जपति हृदय रघुपति गुण श्रेणी ॥८॥

हनुमान्जी ने सीताजी को देख कर मनही मन में प्रणाम किया और वहाँ बैठे बैठे पहर भर रात बीत गई ॥ ७ ॥ सीताजी का शरीर दुबला हो रहा था शिर के केश जटा हो कर इकट्ठे चिपट कर एक वेणी बन गये थे और हृदय में श्रीरामचन्द्रजी के गुण-गणों को जप रही थीं ॥ ८ ॥

दोहा—निज पद नयन दिये मन, राम चरण लवलीन ।
परम दुखी भा पवनसुत, निरखि जानकी दीन ॥ ८॥

सीताजी अपने चरणों की ओर टकटकी लगाकर देख रही थीं और मन श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में लग रहा था ऐसी जानकीजी को दीन दशा में देख कर हनुमान् जी बहुतही दुःखी हुए ॥ ८ ॥

तरु पल्लव महँ रहा लुकाई ❀ करै विचार करौं का भाई ॥ १ ॥
तेहि अवसर रावण तहँ आवा ❀ संग नारि बहु किये बनावा ॥२॥

हनुमान्जी वृक्षके पत्तों में छिप रहे और विचार करने लगे कि अरे भाई ! अब क्या करना चाहिये, यहाँ भाई कहना साधारण बात है ॥ १ ॥ उसी समय वहाँ रावण आ पहुँचा उसके संग में शृंगार किये हुए बहुत सी स्त्रियाँ थीं ॥२॥

बहु विधि खल सीतहिं समुझावा ❀ साम दाम भय भेद दिखावा ॥३॥

दुष्ट रावण ने सीताजी को बहुत भाँति से साम दाम भय भेद दिखलाया, साम

प्रीति दिखाई, दाम (धन ऐश्वर्य का लोभ दिखलाया) भय (दंड आदि की धमकी दी), भेद (आपस में बिगाड़ करा देने की बात) और दूसरों पर प्रेम आदि की बातें कह कर समझाया ॥ ३ ॥

कह रावणु सुनु सुमुखि सयानी । मन्दोदरी आदि सब रानी ॥४॥
तव अनुचरीं करौं प्रण मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ॥५॥

रावण कहने लगा कि सुन्दर मुखवाली ! हे सयानी ! सुनो, मन्दोदरी आदि जितनी मेरी रानियां हैं ॥ ४ ॥ उन सबकी मैं तुम्हारी दासी बनाऊँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है, तुम एक बार मेरी ओर देखो ॥५॥

तृण धरि ओट कहति बैदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥६॥
सुनु दशमुख खद्योत प्रकाशा । कबहुँ कि नलिनी करहि बिकाशा ॥७॥

यह सुन अपने परम स्नेही रामचन्द्रजी का स्मरण कर आड़ में तिनका रख कर सीताजी कहने लगीं ॥ ६ ॥ रे दशमुख रावण ! सुन, क्या जुगनू के प्रकाश से कमलिनी कभी खिलती है, अर्थात् तू जुगनू है तेरी ओर मैं नहीं देख सकती, रामचन्द्रजी सूर्य हैं सूर्यके प्रकाशसे कमलिनीका विकास होता है उन्हींके श्रीमुखके प्रकाश से यह कमलिनी खिलेगी अर्थात् उन्हींकी ओर मैं देखूँगी ॥ ७ ॥

अस मन समुझि कहति जानकी । खल सुधि नहिं रघुवीर बान की ॥८॥
शठ सूने हरि आनेसि मोही । अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ॥९॥

इस प्रकार मन में समझ ले, फिर सीताजी कहती हैं रे दुष्ट ! तुझे रघुवीरके बाण की सुधि नहीं है ॥ ८ ॥ रे शठ ! तू मुझे सूने में (रामचन्द्रजी के वहाँ न होते सूना देख पा कर) हर लाया रे अधम ! निलज्ज ! तुझे लाज नहीं आती ॥

दोहा—आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान ।
परुष वचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान ॥९॥

अपने को जुगनू के समान और रामचन्द्रजी को सूर्य के समान सुनकर तथा और भी खल सठ और अधम निर्लज्ज ये कठोर वचन सुनकर रानियोंके सामने रावण बहुत खिसिया गया और क्रोध कर अपनी चन्द्रहास तलवार निकाल कर बोला ॥९॥

सीता तैं मम कृत अपमाना । काटौं तव शिर कठिन कृपाना ॥१॥
नाहिन सपदि मानु मम बानी । सुमुखि होत नतु जीवन हानी ॥२॥

हे सीता ! तूने मेरा अपमान किया है, तेरा शिर इस पैनी तलवार से काटता हूँ ॥ १ ॥ नहीं तो जल्दी से मेरी बात मान ले, हे सुमुखी ! नहीं मानेगी तो जीवन-हानि होती है अर्थात् मार डालूँगा ॥ २ ॥

श्याम सरोज दाम सम सुन्दर ❋ प्रभु भुज करि कर सम दशकन्धर॥३॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा ❋ सुनु शठ अस प्रमाण प्रण मोरा ॥४॥

यह सुन कर सीताजी रावणसे कहने लगीं कि हे मूर्ख ! सुन या तो नीले कमल की मालाके सामान और हाथी के सूंड के समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी की भुजा अथवा तेरी यह पैनी तलवार ही मेरे कंठ में पड़ेगी, ऐसा मेरा भी दृढ़ निश्चय है इसके अतिरिक्त कोई मुझे स्पर्श न कर सकेगा ॥ ४ ॥

चंद्रहास हरु मम परितापा ❋ रघुपति विरह अनल संतापा ॥५॥
शीतल निशि तव असि वर धारा ❋ कह सीता हरु मम दुख भारा ॥६॥

सीताजी चंन्द्रहास तलवार से कह रही हैं कि हे चन्द्रहास ! तू श्रीरामचन्द्रजी के विरहरूपी अग्नि से उत्पन्न हुए मेरे इस दुःखको हर ले ॥५॥ क्योंकि तेरी धार शीतल रात्रि रूप है जिस प्रकार शीतल रात्रि अग्निको नाश कर देती है इसी प्रकार तू मुझे मार कर मेरे वियोगरूपी दुःख को शांत कर दे ॥ ६ ॥

सुनत वचन पुनि मारन धावा ❋ मयतनया कहि नीति बुझावा ॥७॥
कहेसि सकल निशिचरिन्ह बुलाई ❋ सीतहिं बहु विधि त्रासहु जाई ॥८॥
मास दिवस महँ कहा न माना ❋ तौ मैं मारव कठिन कृपाना ॥९॥

रावण सीताजी के ऐसे वचन सुन मारने के लिये दौड़ा परन्तु मंदोदरीने नीतियुक्त वचन कह कर समझाया कि स्त्री का वध करना उचित नहीं ॥७॥ तब रावण वहाँ की सब निशाचारियों को बुला कर इस प्रकार कहने लगा कि सीता को बहुत प्रकारसे भय दिखाओ ॥ ८ ॥ और फिर कहा कि यदि यह एक महीनेमें मेरा कहना नहीं मानेगी तो मैं इसे कठोर तलवारसे मारडालूँगा ।

दोहा—गयउ भवन दशकंध तव, इहाँ निशाचरि वृन्द ।
सीतहि त्रास दिखावहीं, धरहिं रूप बहु मंद ॥ १० ॥

ऐसा कह कर रावण तो घर को चला गया और यहाँ राक्षसियाँ नाना प्रकार के भयंकर रूप धारण करके सीता को डर दिखाने लगीं ॥ १० ॥

त्रिजटा नाम राक्षसी एका ❋ राम चरण रति निपुण विवेका ॥१॥
सबहिं बुलाय सुनायसि सपना ❋ सीतहिं सेइ करौं हित अपना ॥२॥

जब कि राक्षसियों को इस प्रकार भय दिखा रही थीं उसी समय एक त्रिजटा नाम की राक्षसी जो बड़ी चतुर और ज्ञानी थी जिसे रामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति भी थी सोते से उठ कर आई ॥ १ ॥ और सबको बुला कर अपना सपना सुनाया और कहने लगी कि यदि अपना भला चाहो तो सीताजी की सेवा करो ॥ २ ॥

सपने बानर लंका जारी ❀ यातुधान सेना सब मारी ॥ ३ ॥
खर आरूढ़ नगन दश शीशा ❀ मुंडित शिर खंडित भुज बीशा ॥ ४ ॥

त्रिजटा कहने लगी कि सपने में मैंने देखा कि एक बानर आया है जिसने लंका को जला दिया और जितनी निशाचरों की सेना उसे मारने गई उस सब सेना को उसने मार डाला ॥ ३ ॥ और रावण नंगे शरीर गधे पर सवार था जिसके दसो शिर मुँड़े और बीसौ भुजायें कटी हुई थीं ॥ ४ ॥

यहि विधि सो दक्षिण दिशि जाई ❀ लंका मनहुँ विभीषण पाई ॥५॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई ❀ तब प्रभु सीतहिं बोलि पठाई ॥६॥

और इसी प्रकार रावण तो दक्षिण दिशा को चला गया और लंका का राज्य मानो विभीषण को मिल गया ॥ ५ ॥ और नगर भरमें श्रीरामचन्द्रजी की दुहाई फिर गयी अर्थात् रामचन्द्रजी का अधिकार हो गया तब उन्होंने सीताको बुला भेजा ॥६॥

यह सपना मैं कहौं विचारी ❀ होइहि सत्य गये दिन चारी ॥७॥
तासु वचन सुनते सब डरीं ❀ जनक सुता के चरणन परीं ॥८॥

त्रिजटा कहती है कि यह सपना मैं विचार कर कहती हूँ कि चार दिन के बाद सच हो जायगा ॥ ७ ॥ उस त्रिजटा के वचन सुन सब राक्षसियाँ डर गईं और सीताजी के चरणों पर गिरीं और विनय करने लगीं ॥ ८ ॥

दोहा—जहँ तहँ गईं सकल मिलि, सीता के मन शोच।
मास दिवश बीते मोहिं, मारिहि निशिचर पोच ॥ ११ ॥

सब राक्षसियाँ मिल कर इधर उधर चली गई परन्तु सीताजी के मनमें बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई कि एक महीने के बाद यह नीच राक्षस मुझे मार डालेगा ॥११॥

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी ❀ मातु विपति संगिनि तैं मोरी ॥१॥
तजौं देह करु बेगि उपाई ❀ दुसह विरह अब नहिं सहिजाई॥२॥

सीताजी त्रिजटासे हाथ जोड़कर कहने लगीं कि हे माता! विपतिमें मेरा साथ देनेवाली तुम्हीं हो ॥१॥ इससे हे माता! कोई ऐसा उपाय शीघ्र करो जिससेमैं अपना शरीर छोड़ दूँ, क्योंकि अब मुझसे यह विरहका कठिन दुःख सहा नहीं जाता ॥२॥

आनि काठ रचि चिता बनाई ❀ मातु अनल तुम देहु लगाई ॥३॥
सत्य करहु मम प्रीति सयानी ❀ सुनइ को श्रवण शूल सम बानी॥४॥

हे माता! तुम लकड़ी लाकर चिता बना दो और फिर मुझे जलानेके लिये उसमें आग लगा दो ॥३॥ और मेरे ऊपर जो आपकी प्रीति है उसे सत्य करके दिखा दो क्योंकि अब यह कानोंसे शूलके समान बचन कौन सुने ॥ ४ ॥

सुनत बचन पद गहि समुझावा ॥ प्रभु प्रताप बल सुयश सुनावा ॥५॥
निशि न अनल मिलु राजकुमारी ॥ अस कहि सो निज भवन सिधारी॥६॥

त्रिजटाने सीताके ऐसे वचनोंको सुनकर उनके चरण पकड़कर उन्हें समझाया और श्रीरामचन्द्रजीका बल प्रताप और सुयश कह सुनाया ॥५॥ और कहने लगी कि हे राजकुमारी रातमें अग्नि नहीं मिल सकी, ऐसा कहकर अपने घर चली गई ॥६॥

कह सीता विधि भा प्रतिकूला ॥ मिलै न पावक मिटै न शूला ॥७॥
देखियत प्रगट गगन अंगारा ॥ अवनि न आवत एको तारा ॥८॥

त्रिजटाके चले जानेपर सीताजी अकेली बैठी हुई विचारकर रही हैं कि दैवही मेरे प्रतिकूल होगया, न तो अग्नि ही मिलती है न मेरा दुख ही दूर होता है। आकाशमें बड़े बड़े अंगारे (तारे) दिखाई दे रहे हैं परन्तु पृथ्वी पर एकभी नहीं गिरता ॥८॥

पावक मय शशि स्रवत न आगी ॥ मानहुँ मोहि जानि हतभागी ॥९॥
सुनहु विनय मम विटप अशोका ॥ सत्य नाम करु हरु मम शोका ॥१०॥

चन्द्रमा विरहानलको उत्तेजित करता है अतएव सीताजी चन्द्रमाको देख कर कहती हैं कि चन्द्रमा भी अग्निसे भरा हुआ दिखाई देता है परन्तु मुझे भाग्यहीन जानकर यह भी आग नहीं बरसाता ॥९॥ हे अशोक वृक्ष! मेरी विनयको सुनो और अपने नामको सत्य करो तथा मेरे शोकको दूर करो ॥ १० ॥

नूतन किसलय अनल समाना ॥ देहु अगिनि मम करहु निदाना ॥११॥
देखि परम विरहाकुल सीता ॥ सो क्षण कपिहिं कल्प सम बीता॥१२॥

हे अशोक वृक्ष! तुम्हारे नवीन पत्ते अग्निके समान लाल हैं तो तुम मुझे अग्नि देकर मेरा अन्त करो अर्थात मुझे भस्म करदो ॥ ११ ॥ सीताजी को अत्यन्त विरह से व्याकुल देख कर वह क्षण हनूमानजी को कल्प के समान बीता ॥ १२ ॥

सोरठा—कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु अशोक अङ्गार, दीन्ह हर्षि उठि कर गह्यो ॥ १२ ॥

तब श्री हनूमानजी ने विचार कर वह मुद्रिका (जो श्रीरामचन्द्रजी ने चलते समय दी थी) डाल दी सीताजी को क्या मालूम हुआ कि मेरी विनय सुन अशोक ने कृपा कर अंगार दिया है सो प्रसन्न हो कर उसे उठा लिया ॥ १२ ॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर ॥ राम नाम अंकित अति सुन्दर ॥१॥
चकित चितै मुंदरी पहिचानी ॥ हर्ष विषाद हृदय अकुलानी ॥२॥

तब सीताजी ने उस मनोहर मुद्रिका को देखा जिस पर सुन्दर राम नाम खुदा हुआ था ॥ १ ॥ सीताजी चकित हो कर उस मुन्दरी को देखने लगीं और उसे पहचान

कर हर्ष और दुःख से घबरा गईं ॥ २ ॥

जीति को सकै अजय रघुराई ॥ माया ते अस रची न जाई ॥३॥
सीता मन विचार कर नाना ॥ मधुर बचन बोले हनुमाना ॥४॥

सीता जी मुद्रिका को देख विचार करती हैं कि या तो कोई (रामचन्द्रजी को) जीत कर मुद्रिका लाया होगा या माया से बनाई गई होगी परन्तु ! यह दोनों बात असंभव है क्योंकि रामचन्द्रजी अजय हैं अर्थात् उन्हें कोई जीत नहीं सकता और मायासे ऐसीमुद्रिका बन नहीं सकती॥३॥ इसी प्रकार सीताजी नाना प्रकारके विचार कर रही थीं कि उसी समय श्री हनुमान्जी मधुर बचन बोले ॥ ४ ॥

रामचन्द्र गुण वर्णन लागे ॥ सुनतहिं सीता कर दुख भागे ॥५॥
लागी सुनै श्रवण मन लाई ॥ आदिहिं ते सब कथा सुनाई ॥६॥

और श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंको वर्णन करने लगे जिसे सुन सीताके सब दुख दूर हो गये ॥ ५ ॥ और वह मन और कान लगा कर सुनने लगीं, हनुमान्जी ने शुरू से सब कथा कह सुनाई ॥ ६ ॥

श्रवणामृत ज्यहिं कथा सुनाई ॥ काहे न प्रगट होत सो आई ॥७॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ ॥ फिरि बैठी मन विस्मय भयऊ ॥८॥

तब सीताजी कहने लगीं कि जिसने मेरे कानों को यह अमृत रूपी कथा सुनाई है वह सन्मुख क्यों नहीं आता ॥ ७ ॥ तब हनुमान्जी सीताजी के निकट गये, जिन्हें देख सीताजी ने मुँह फेर लिया कारण कि उन्हें संदेह उत्पन्न हुआ कि यह बन्दर रूप धारी रावण अथवा कोई राक्षस तो नहीं है ॥ ८ ॥

राम दूत मैं मातु जानकी ॥ सत्य शपथ करुणा निधान की ॥९॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी ॥ दीन्ह राम तुम कहँ सहिदानी ॥१०॥
नर, बानरहिं संग कहु कैसे ॥ कही कथा संगति भइ जैसे ॥११॥

तब हनुमान्जी ने सीताजी से कहा कि हे माता ! श्रीरामचन्द्रजी की कसम खा कर कहता हूँ कि मैं उनका दूत हूँ ॥ ९ ॥ और यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ, श्रीरामचन्द्रजी ने पहचान के लिये यह आपको चिन्ह स्वरूप दी है और यही मेरे दूत होने का सच्चा प्रमाण है ॥ १० ॥ तब सीताजी ने कहा कि मनुष्य और बन्दर का साथ कैसे हुआ, वह सब कथा हनुमान्जी ने कह कर समझाई ॥ ११ ॥

दोहा—कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विश्वास ।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपासिंधु कर दास ॥ १३ ॥

हनुमान्जी के ऐसे प्रेम भरे बचनों को सुन कर सीताजी के हृदय में विश्वास

हो गया और उन्होंने जान लिया कि यह मन वचन और वाणी से (अर्थात् सच्चा) श्री रामचन्द्रजी का सेवक है ॥ १३ ॥

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी ॥ सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥१॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना ॥ भयउ तात मो कहँ जलयाना ॥२॥

हनुमान्‌जी को हरिभक्त जान कर सीताजी के मन में बड़ी, प्रीति बढ़ी, नेत्रों में जल भर आया और शरीर के रोयें खड़े हो गये ॥ १ ॥ सीताजी कहने लगीं हे तात ! मैं वियोगरूपी समुद्र में गोते खा रही थी, मेरे बचाने के लिये तुम नाव रूप होकर आ गये ॥ २ ॥

अब कहु कुशल जाउँ बलिहारी ॥ अनुजसहित सुख भवन खरारी ॥३॥
कोमलचित कृपालु रघुराई ॥ कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥४॥

हे हनुमान ! अब उनकी कुशल बताओ, मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ कहो क्या लक्ष्मणजी के सहित रामचन्द्रजी कुशल और सुखपूर्वक तो हैं ॥ ३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तो बड़े ही कोमल चित्त और दयालु थे, फिर हे तात ! यह निठुरता किस कारण धारण की ॥ ४ ॥

सहज बानि सेवक सुखदायक ॥ कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥५॥
कबहुँ नयन मम शीतल ताता ॥ हुइहैं निरखि श्याम मृदु गाता ॥६॥

श्रीरामचन्द्रजी की तो यह स्वाभाविक आदत है कि वे सेवक को सुख दिया करते हैं, क्या वे कभी मेरी याद करते हैं ॥ ५ ॥ हे तात ! क्या कभी उस कोमल श्यामले शरीरको देख कर मेरे नेत्र शीतल होंगे ॥ ६ ॥

बचन न आव नयन भरि बारी ॥ अहो नाथ मोहि निपट बिसारी ॥७॥
देखि बिरह ब्याकुल अति सीता ॥ बोले कपि मृदु वचन विनीता ॥८॥

सीताजी प्रेममें बिह्वल हो गईं, नेत्रोंमें जल भर आया और बोलना बन्द हो गया, फिर धीरज धर कहने लगीं हे नाथ ! आपने मुझे बिलकुल भुला दिया ॥७॥ इस प्रकार सीताजीको बिरह में अत्यन्त व्याकुल देख कर हनुमानजी विनयसे भरे हुए मीठे वचन बोले ॥ ८ ॥

मातु कुशल प्रभु अनुज समेता ॥ तव दुख दुखी सो कृपानिकेता ॥९॥
जननी जनि मानहु जिय ऊना ॥ तुमते प्रेम राम कहँ दूना ॥१०॥

हे माता ! श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित कुशलपूर्वक हैं परन्तु वे केवल आपके वियोगसे अवश्य दुखी हैं ॥ ९ ॥ हे माता ! आप अपने हृदयको छोटा मत करो (दुख न करो) आपसे उनके हृदयमें दूना प्रेम है ॥ १० ॥

दोहा—रघुपति के संदेश अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गद्गद भयउ, भरे विलोचन नीर ॥१४॥

हनुमान्‌जी कहने लगे हे माता! श्रीरामचन्द्रजी का संदेश धैर्यपूर्वक सुनिये ऐसा कहकर हनुमानजी गद्गद कंठ होगये और आँखोंमें प्रेमाश्रु भर गये ॥१४॥

राम वियोग कहा सुनु सीता ॥ मो कहँ सकल भयो विपरीता ॥१॥
नूतन किसलय मनहुँ कृशानू ॥ काल निशा सम निशिशशि भानू॥२॥

फिर धीरज धर हनुमान्‌जी कहने लगे कि हे माता! प्रभुने कहा है कि तुम्हारे वियोगमें मुझे सब वस्तुयें विपरीत हो गईं ॥१॥ अर्थात् नये पत्ते अग्निके समान, रात्री कालरात्रिके समान और चन्द्रमा सूर्य के समान दुखदाई हो गया ॥२॥

कुवलय विपिन कुन्त बन सरिसा ॥ वारिद तप्त तेल जनु बरिसा ॥३॥
जेहि तरु रहौं करत सोइ पीरा ॥ उरग श्वाँस सम त्रिविध समीरा॥४॥

और कमल का बन मुझे भालोंके बनके समान छेदता है, बादलों का जल गर्म तेलके समान बरसता हुआ ज्ञात होता है ॥ ३ ॥ जिस वृक्षके नीचे रहता हूँ वही दुखदाई प्रतीत होता है और शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु साँप की फुफकार के समान विषभरी प्रतीत होती है ॥४।

कहे ते कछु दुख घटि नहिं होई ॥ काहि कहौं यह जान न कोई ॥५॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा ॥ जानत प्रिया एक मन मोरा ॥६॥

कहनेसे कुछ दुख कम नहीं होगा अतएव किससे कहूँ यह कोई जान नहीं सकता ॥ मेरे और तुम्हारे प्रेम का तत्त्व केवल एक मेरा ही मन जानता है ॥६॥

सो मन रहत सदा तोहिं पाहीं ॥ जानु प्रीति रस इतनेहि माहीं ॥७॥
प्रभु संदेश सुनत वैदेही ॥ मग्न प्रेम तनु सुधि नहिं तेही ॥८॥

सो वह मेरा मन सदा तुम्हारे पास रहता है, सब प्रीति रस इतने ही में जान लेना ॥७॥ ऐसा श्रीरामचन्द्रजी का संदेश सुन सीताजी ऐसी प्रेममें मग्न हुईं कि उन्हें अपने शरीरका कुछ भी ध्यान न रहा ॥ ८ ॥

कह कपि हृदय धीर धरु माता ॥ सुमिरि राम सेवक सुखदाता ॥९॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई ॥ सुनि मम वचन तजहु विकलाई ॥१०॥

उस समय हनुमान्‌जी कहने लगे कि हे माता! सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके हृदयमें धीरज धरो ॥९॥ और उनकी प्रभुता को हृदयमें रख मेरे वचनोंको सुन व्याकुलता छोड़ दो ॥ १० ॥

दोहा—निशिचर निकर पतंग सम, रघुपति बाण कृशानु।

जननि हृदय निज धीर धरु, जरे निशाचर जानु ॥१५॥

निशाचरोंका समूह पतंगके समान है और उनके जलानेके लिये रामचन्द्रजीके बाण अग्निरूप हैं, इसलिये हे माता ! इन निशाचरों को भस्म हुआ समझ कर हृदयमें धीरज धरो ॥ १५ ॥

जो रघुवीर होत सुधि पाई ❀ करते नहिं विलम्ब रघुराई ॥१॥
राम बाण रवि उदय जानकी ❀ तम वरूथ कहँ यातुधान की ॥२॥

हे माता ! यदि श्रीरामचन्द्रजीको आपकी खबर मिल गई होती तो वह कदापि देर न करते ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके बाण उदय हुए सूर्यके समान हैं जिनके आगे राक्षसोंकी अंधकार रूपी सेना कहाँ ठहर सकती है अर्थात् नाश हो जायगी ॥ २ ॥

अबहिं मातु मैं जाऊँ लिवाई ❀ प्रभु आयसु नहिं राम दुहाई ॥३॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा ❀ कपिन सहित ऐहैं रघुवीरा ॥४॥
निशिचर मारि तुम्हें लै जैहैं ❀ तिहुँ पुर नारदादि यश गैहैं ॥५॥

हनुमान्‌जी कहते हैं कि हे माता ! मैं तुम्हें अभी लिवा लेचलूँ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी की शपथ खाकर कहता हूँ कि उनकी ऐसी आज्ञा नहीं है ॥ ३ ॥ इसलिये हे माता ! कुछ दिन और धैर्य्य रक्खो, कपियोंके सहित श्रीरामचन्द्रजी आवेंगे ॥४॥ और निशाचरोंको मार कर तुम्हें ले जावेंगे तब उनका यश नारद आदि मुनि लोग तीनों लोकोंमें वर्णन करेंगे ॥ ५ ॥

हैं सुत कपि सब तुमहिं समाना ❀ यातुधान भट अति बलवाना ॥६॥
मोरे हृदय परम संदेहा ❀ सुनिकपि प्रकट कीन्ह निजदेहा ॥७॥

सीताजी हनुमान्‌जीसे कहती हैं कि हे पुत्र सब बंदर तुम्हारेही समान छोटे होंगे और राक्षस लोग बड़े ही बलवान हैं ॥६॥ इस कारण मेरे मनमें बड़ी भारी शंका हो रही है ऐसा वचन सुन हनुमान्‌जी ने अपना यथार्थ स्वरूप जानकीजी के सामने प्रकट किया ॥ ७ ॥

कनक भूधराकार शरीरा ❀ समर भयंकर अति रणधीरा ॥८॥
सीता मन भरोस तब भयऊ ❀ अति लघु रूप पवनसुत लयऊ ॥९॥

वह हनुमान्‌जीका स्वरूप सुवर्णके पर्वतके समान युद्धके लिये बड़ाही डरावना और धैर्य्ययुक्त था ॥८॥ उस स्वरूपको देख कर सीताजीके मनमें भरोसा हुआ, फिर हनुमान्‌जीने वही अपना अत्यन्त छोटा रूप धारण कर लिया ॥ ९ ॥

दोहा—सुनु माता शाखामृगहिं, नहिं बल बुद्धि विशाल ।
प्रभु प्रताप ते गरुड़ हीं, खाइ परम लघु व्याल ॥१६॥

फिर हनुमान्‌जी कहने लगे हे माता! बंदरोंको कोई बड़ी विशाल बुद्धि या बल नहीं होता परन्तु जिस प्रकार प्रभुके प्रतापसे छोटासा साँपभी गरुड़को खा सकता है उसी प्रकार उनके प्रतापसे हमभी राक्षसोंको मार सकते हैं यह भावार्थ हुआ।

मन संतोष सुनत कपि बानी ❀ भक्ति प्रताप तेज बल सानी ॥१॥
आशिष दीन्ह राम प्रिय जाना ❀ होहु तात बल-बुद्धि-निधाना ॥२॥

ऐसे हनुमान्‌जीके भक्ति, प्रताप, तेज और बलसे भरे हुए वचनों को सुनकर सीताजीके मनमें संतोष हुआ ॥१ और हनुमान्‌जी को रामचन्द्रका प्यारा जानकर यह आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और बुद्धिके निधान होओ ॥ २ ॥

अजर अमर गुणनिधि सुत होहू ❀ करहिं सदा रघुनायक छोहू ॥३॥
करहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना ❀ निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥४॥

तुम्हें बुढ़ापा न आवे और अमर और गुण के निधान होओ और श्रीरामचन्द्रजी सदा कृपा करें ॥३॥ श्रीरामचन्द्रजी कृपा करें ऐसे माताके वचन सुन हनुमान्‌जी प्रेम में अत्यन्त मगन हो गये ॥ ४ ॥

बार बार नायउ पद शीशा ❀ बोलेउ वचन जोरि कर कीशा ॥५॥
अब कृत्यकृत्य भयउँ मैं माता ❀ आशिष तव अमोघ विख्याता ॥६॥

और हनुमानजी बार बार सीताजी के चरणों को शीश नवा हाथ जोड़ कर बोले ॥५॥ कि हे माता! अब मैं कृतार्थ हो गया, क्योंकि आपका आशीर्वाद अटल है कभी निष्फल नहीं होता यह बात प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥

सुनिय मातु मोहिं अतिशय भूखा ❀ लागि देखि सुन्दर फल रूखा ॥७॥
सुनु सुत करहिं विपिन रखवारी ❀ परम सुभट रजनीचर भारी ॥८॥
तिन कर भय माता मोहिं नाहीं ❀ जो तुम सुख मानहु मन माहीं ॥९॥

हे माता! वृक्षों में सुन्दर फल लगे देखकर मुझे बड़ी भूख लगी है ॥७॥ तब सीताजी ने कहा कि हे पुत्र! इस फुलवारी की रक्षा बड़े राक्षस योधा करते हैं ॥८॥ तब हनुमान्‌जी ने कहा कि यदि आप अपने चित्त में प्रसन्नता लावें तो मुझे उन राक्षसों का कुछ भी डर नहीं है ॥ ९ ॥

दोहा-देखि बुद्धि बल निपुण कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरण हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥१७॥

सीताजी ने हनुमान्‌जी को बुद्धि और बल में निपुण देखकर कहा कि हे पुत्र! जाओ और श्रीरघुनाथजी के चरणों को हृदय में रख मीठे फल खाओ ॥ १७ ॥

चलेउ नाइ शिर पैठेउ बागा ❀ फल खाये तरु तोरन लागा ॥१॥

रहे तहाँ बहु भट रखवारे ॐ कछु मारे कछु जाइ पुकारे ॥२॥

हनुमान्‌जी जानकीजीके चरणों को शीश नवा कर बाग में घुसे और फलों को खाकर वृक्षों को तोड़ने लगे ॥१॥ वहाँ बहुत बड़े योधा रक्षाके लिये रहते थे, उनमें से कुछ तो हनुमान्‌जीने मार डाले कुछ रावण के यहाँ जाकर कहने लगे ॥२॥

नाथ एक आवा कपि भारी ॐ त्यहिं अशोकवाटिका उजारी ॥३॥
खायसि फल अरु विटप उपारे ॐ रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे ॥४॥

रखवारे जाकर रावण से कहने लगे कि हे नाथ! एक बड़ा भारी बन्दर आया है और उसने सारी अशोकवाटिका उजाड़ दी ॥ ३ ॥ उसने फल खाये और पेड़ों को उखाड़ डाला और रखवारों को मसल मसल कर धरती पर डाल दिया ॥४॥

सुनि रावण पठये भट नाना ॐ तिनहिं देखि गर्जा हनुमाना ॥५॥
सब रजनीचर कपि संहारे ॐ गये पुकारत कछु अध मारे ॥६॥

यह सुन कर रावण ने बड़े २ योधा भेजे जिन्हें देखकर हनुमान्‌जी गर्जे ॥५॥ और उसी समय युद्ध में बहुत से राक्षसों को मार डाला जो कुछ अधमरे अर्थात् घायल बच गये वे जाकर रावण के यहाँ फिर पुकारे ॥६॥

पुनि पठवा तेहिं अक्षयकुमारा ॐ चला संग लै सुभट अपारा ॥७॥
आवत देखि विटप गहि तर्जा ॐ ताहि निपाति महाधुनि गर्जा ॥८॥

फिर रावण ने अक्षयकुमार को भेजा, वह अपने साथ में बड़े २ योधाओं की अपार सेना लेकर चला ॥ ७ ॥ उसको आते देखकर हनुमान्‌जी वृक्ष उखाड़ कर उस पर प्रहार किया और उसे मार कर बड़े जोर से गर्जे ॥ ८ ॥

दोहा—कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछुक मिलायसि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारेऊ, प्रभु मर्कट बल भूरि ॥ १८ ॥

और उन योधाओंमेंसे कुछ तो हनुमानजीने मार डाले, कुछ मींज डाले कुछ धूलमें मिला दिये कुछ भागकर फिर रावण से कहने लगे कि हे नाथ बन्दर बड़ा बलवान है

सुनि सुत-वध लंकेश रिशाना ॐ पठवा मेघनाद बलवाना ॥ १ ॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसि ताही ॐ देखहुँ कीश कहाँ कर आही ॥ २ ॥

अक्षयकुमारके मारे जानेका हाल सुन रावण बड़ा क्रोधित हुआ और उसने बलवान मेघनादको भेजा ॥१॥ और उससे यह कह दिया कि हे पुत्र! उस वानरको मार न डालना, बाँध कर लाना जिससे मैं यह देखूँ कि वह कहाँ का बन्दर है ॥२॥

चला इंद्रजित अतुलित योधा ॐ बंधु वधन सुनि उपजा क्रोधा ॥३॥
कपि देखा दारुण भट आवा ॐ कटकटाइ गर्जा अरु धावा ॥४॥

बड़ा बलवान योधा मेघनाद चला परन्तु भाई अक्षयकुमार का मारा जाना सुन उसके हृदयमें बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ ॥३॥ हनुमान्‌जीने देखा कि यह कोई बड़ा ही बलवान योधा आया है इससे बड़े जोरसे गरजे और दौड़े ॥ ४ ॥

अति विशाल तरु एक उपारा ॐ विरथ कीन्ह लंकेश कुमारा ॥५॥
रहे महाभट ताके संगा ॐ गहि २ कपि मर्देसि निज अंगा ॥६॥

और एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़ कर मेघनादके ऊपर प्रहार कर उसका रथ तोड़ उसे रथसे हीन कर दिया ॥५॥ और जो उसके साथ बड़े २ वीर योधा थे उन्हें अपने शरीरसे मल २ कर डाल दिये ॥ ६ ॥

तिनहिं निपाति ताहि सन बाजा ॐ भिरे युगल मानहुँ गजराजा ॥७॥
मुष्टिक मारि चढ़ा तरु जाई ॐ ताहि एक क्षण मूर्छा आई ॥८॥

उन योद्धाओंको मार कर हनुमान्‌जी मेघनादसे लड़ने के लिये जा भिड़े, उस समय ऐसा ज्ञात होता था कि दो गजराज परस्पर युद्ध कर रहे हैं ॥७॥ मेघनादको एक मुष्टिक (घूँसा) मार कर हनुमान्‌जी पेड़ पर जा चढ़े और मेघनादको क्षण भरके लिये मूर्छा आगई ॥ ८ ॥

उठि वहोरि कीन्हेसि बहु माया ॐ जीति न जाइ प्रभंजन जाया ॥९॥

फिर मेघनाद चैतन्य होकर उठा और बहुत प्रकारकी माया करने लगा परन्तु फिर भी पवनपुत्र हनुमान्‌जीको जीत न सका ॥९॥

दोहा—ब्रह्म अस्त्र तेहि साधेऊ, कपि मन कीन्ह विचार ।
जो न ब्रह्म शर मानऊँ, महिमा मिटै अपार ॥१९॥

जब मेघनादने हनुमान्‌जीके बांधनेके लिय ब्रह्मास्त्र लिया तो हनुमान्‌जी मनमें विचार करने लगे कि यदि मैं इस ब्रह्म अस्त्रको भी निष्फल करता हूँ तो इसकी अनोखी महिमा जो संसारमें फैल रही है नष्ट हो जायगी ॥ १९ ॥

ब्रह्म बाण तेहिं कपि कहँ मारा * परतिहुँ बार कटक संहारा ॥ १ ॥
तेहिं जाना कपि मूर्च्छित भयऊ * नागपाश बाँधेसि लै गयऊ ॥ २ ॥

मेघनाद ने हनुमान्‌जी के ऊपर ब्रह्म अस्त्र चलाया जिससे हनुमान्‌जी गिर गये और गिरते समय भी बहुत सी सेना का नाश किया ॥ १ ॥ जब उसने जाना कि हनुमान्‌जी मूर्च्छित हो गये तो वह उन्हें नागफांस में बाँध कर ले गया ॥ २ ॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी * भवबंधन काटहिं नर ज्ञानी ॥३॥
तासु दूत बन्धन तर आवा ॐ प्रभु कारज लगि आपु बँधावा ॥४॥

श्रीशिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! सुनो जिसका नाम जप कर ज्ञानी मनुष्य

संसार के बंधन से छूट जाते हैं ॥ ३ ॥ उन्हीं प्रभु का दूत बँध गया (परन्तु यह कोई शंका की बात नहीं है) क्योंकि उन्हीं स्वामी के कार्य के लिये हनुमान्‌जी ने अपने को बँधा लिया ॥ ४ ॥

कपि बंधन सुनि निशिचर धाये ॥ कौतुक लागि सभा लै आये ॥५॥
दशमुख सभा दीख कपि जाई ॥ कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ॥६॥

हनुमानजी बँध गये इस समाचार को सुन कर राक्षस लोग दौड़े और तमाशा करने के हेतु उसे रावण की सभा में ले गये ॥ ५ ॥ हनुमानजीने रावण की सभा को जाकर देखा, उसकी श्रेष्ठता का वर्णन कुछ किया नहीं जाता ॥ ६ ॥

कर जोरे सुर दिशिप विनीता ॥ भृकुटि विलोकहिं सकल सभीता ॥७॥
देखि प्रताप न कपि मन शंका ॥ जिमि अहिगण महँ गरुड़ अशंका ॥८॥

दिग्पाल हाथ जोड़े हुए नम्र भावसे खड़े हैं और डरते हुए सब रावणकी भृकुटी की ओर देख रहे हैं ॥७॥ ऐसे बड़े विभवको भी देख कर हनुमान्‌जीके हृदयमें तनिक सी शंका न हुई जैसे सर्पों के मध्यमें गरुड़ निःशंक होकर चला जाता है ॥ ८ ॥

दोहा–कपिहिं विलोकि दशानन, विहँसा कहि दुर्वाद ।
सुत बध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय विषाद ॥ २० ॥

हनुमान्‌जीको देख कर रावण कुछ दुर्वचन कह कर हँसा परन्तु अक्षयकुमार का स्मरण याद करके उसके हृदयमें बड़ा दुःख उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥

कह लंकेश कवन तैं कीशा ॥ केहि के बल घालेसि वन खीशा ॥१॥
कीधौं श्रवण सुनेसि नहिं मोहीं ॥ देखेउँ अति अशंक शठ तोहीं ॥२॥

रावण हनुमान्‌जीसे कहता है कि तू कौन बन्दर है और किसके बलसे तूने मेरी वाटिका का नाश किया है ॥१॥ क्या तू ने मेरा नाम कभी कानों नहीं सुना ? रे मूर्ख ! बन्दर तू मुझे बड़ा निडर दिखाई देता है ॥ २ ॥

मारेसि निशिचर केहि अपराधा ॥ कहु शठ तोहिं न प्राण की बाधा ॥३॥
सुनु रावण ब्रह्मांड-निकाया ॥ पाइ जासु बल विरचित माया ॥४॥

और तू ने किस अपराधके कारण मेरे राक्षसोंको मार डाला है ? हे मूर्ख ! क्या तुझे अपने प्राणोंका तनिक भी भय नहीं है ॥३॥ तब हनुमान्‌जी कहने लगे कि हे रावण ! सुन, जिस परब्रह्मके बलसे माया अनेको ब्रह्मांड-समूहोंकी रचना कर डालती है

जाके बल विरंचि हरि ईशा ॥ पालत हरत सृजत दशशीशा ॥५॥
जा बल शीश धरे सहसानन ॥ अंड कोश समेत गिरि कानन ॥६॥

और जिसके बलसे ब्रह्मा विष्णु और महादेव तीनों देवता संसारको रचते, पालन

करते और नाश करते हैं ॥५॥ और जिसके बलसे शेष नागजी जंगलों और पर्वतों सहित इस पृथ्वीको धारण किये हैं ॥ ६ ॥

धरे जो बिबिध देह सुर त्राता ❀ तुमसे शठ न सिखावन दाता ॥७॥
हर कोदण्ड कठिन जेहि भंजा ❀ तोहिं समेत नृप-दल मद-गंजा ॥८॥
खरदूषण त्रिशिरा अरु बाली ❀ बधे सकल अतुलित बलशाली ॥९॥

और जो ईश्वर देवताओं की रक्षाके लिये और तुम्हारे ऐसे दुष्टोंको शिक्षा (दंड) देनेके लिये नाना प्रकारके रूप धारण करता है ॥७॥ और जिसने महादेवजी के कठोर धनुषको तोड़ा और तुम्हारे समेत सब राजाओंके घमण्डको नाश कर दिया अथवा उस शिव धनुषको कि जिसने तुम्हारे समेत सब राजाओंके गर्वको नाश कर दिया था तोड़ डाला ॥ ८ ॥ और जिसने खर-दूषण विराध-बालि आदि बड़े बड़े बलवान् योधाओं का बध कर डाला ॥ ९ ॥

दोहा—जाके बल लवलेश ते, जितेउ चराचर झारि।
तासु दूत हौं जाहि की, हरि आनेहु प्रिय नारि ॥२१॥

और जिसके लवलेश मात्र बलके अंश से तू ने संसारके सब चर अचर प्राणियों को जीत लिया है, और जिनकी प्यारी स्त्री (सीता) को तू चुरा लाया है हे रावण! मैं उन्हीं का दूत हूँ ॥ २१ ॥

जानौं मैं तुम्हारि प्रभुताई ❀ सहसबाहु सन परी लराई ॥१॥
समर बालि सन करि यश पावा ❀ सुनिकपि बचन बिहँसि बहलावा ॥२॥

हनुमान्जीने कहा हाँ तुम्हारी प्रभुता तो मैं उसी समयसे जानता हूँ जबसे तुम सहस्राबाहुसे लड़े थे ॥१॥ और बालिके साथ युद्ध करके तो तुम्हें बड़ा ही यश प्राप्त हुआ। ऐसे हनुमान्के वचन सुन कर रावणने हँस कर टाल दिया ॥२॥

खायउँ फल मोहिं लागी भूखा ❀ कपि स्वभाव ते तोरेउँ रूखा ॥३॥
सबके देह परम प्रिय स्वामी ❀ मारहिं मोहिं कुमारग-गामी ॥४॥

हनूमान्जी कहते हैं हे रावण! मुझे भूख लगी थी इस कारण मैंने फल खाये और वानरी आदतके अनुसार वृक्षों को भी तोड़ा ॥ ३ ॥ हे दैत्यराज! अपना शरीर तो सबको प्यारा होता है अतएव मैंनेभी फल खाकर अपने शरीरका पालन किया, तिस पर कुमार्गी राक्षस मुझे मारने लगे ॥ ४ ॥

जिन्ह मोहिं मारा तिन्ह मैं मारा ❀ तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारा ॥५॥
मोहिं न कछु बाँधे कर लाजा ❀ कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा ॥६॥

जिन राक्षसोंने मुझे मारा उन्होंको मैंने भी मारा, इस पर भी तुम्हारा लड़का

(मेघनाद) मुझे बाँध लिया ॥५॥ मुझको अपने बाँधे जानेकी कुछ लज्जा नहीं है, मैं अपने स्वामीका कार्य करना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

विनती करौं जोरि कर रावन ॐ सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥७॥
देखहु तुम निज कुलहिं बिचारी ॐ भ्रम तजि भजहु भक्त भय हारी ॥८॥

हे रावण ! मैं दोनों हाथ जोड़ कर तुमसे विनती करता हूँ अभिमानको छोड़ कर मेरी इस शिक्षा को सुनो ॥ ७ ॥ और तुम अपने कुटुम्ब की ओर विचार करके देखो कि पुलस्त्य मुनि और विश्वश्रवा ऋषि तुम्हारे पिता और दादा कैसे भक्त पुरुष हैं इसलिये तुमभी अपने इस झूठे भ्रम को छोड़ कर भक्तोंके दुख दूर करनेवाले भगवान् का भजन करो ॥ ८ ॥

जाके डर अति काल डराई ॐ जो सुर असुर चराचर खाई ॥९॥
तासों बैर कबहुँ नहिं कीजै ॐ मोरे कहे जानकी दीजै ॥१०॥

और हे रावण ! वह काल देवता जो संसारके सब चर अचर देव दानव आदि को खा जाता है सो भी जिसके डरसे डराता है ॥ ९ ॥ उस परमात्मासे कभी शत्रुता नहीं करनी चाहिये और तुम मेरे कहनेसे जानकीजीको लौटा दो ॥१०॥

दोहा-प्रणत पाल रघुवंशमणि, करुणासिंधु खरारि ।
गये शरण प्रभु राखिहैं, सब अपराध विसारि ॥ २२ ॥

हे रावण ! खर के नाश करने वाले रघुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी प्राणकी पालना करने वाले और दया के समुद्र हैं, अगर तुम उनकी शरण में जाओगे तो वे तुम्हारे सब अपराधों को भूल कर तुमको अपनी शरण में ले रक्षा करेंगे ॥२२॥

रामचरण पंकज उर धरहू ॐ लंका अचल राज्य तुम करहू ॥१॥
ऋषि पुलस्त्य यश विमल मयंका ॐ तेहि कुल महँ जनि होसिकलंका ॥२॥

हे रावण ! तुम रामचन्द्रजी के कमलरूपी चरणों को हृदय में धारण करो और लंका में अटल राज्य किये जाओ ॥१॥ पुलस्त्य ऋषि का यश उज्ज्वल चंद्रमारूप संसार में विदित है, उसमें हे रावण ! तुम कलंक रूप होकर उसे न बिगाड़ो ॥२॥

राम नाम बिनु गिरा न सोहा ॐ देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ॥३॥
सब भूषण भूषित वर नारी ॐ बसन हीन नहिं सोह सुरारी ॥४॥

हे रावण ! तू अहंकार और अज्ञान को छोड़ कर अपने हृदय में विचार कर देख कि बिना राम नाम के वाणी भी शोभित नहीं होती ॥ ३ ॥ जैसे कोई परम सुन्दर स्त्री नाना प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित हो परन्तु बिना वस्त्रके वह शोभा को प्राप्त नहीं होती ॥ ४ ॥

राम विमुख सम्पति प्रभुताई ॐ गई रही पाई विनु पाई ॥५॥
सजल मूल जिन सरितन नाहीं ॐ वरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं ॥६॥

और रामचन्द्रसे विमुख होकर यह ऐश्वर्य और सम्पति पाई हुई भी जाती रहेगी अथवा न पाने के समान है ॥ ५ ॥ जिस प्रकार से जिन नदियों में सोता नहीं है उनका जल वर्षा हो जाने के पश्चात सूख जाता है ॥ ६ ॥

सुनु दशकंठ कहौं प्रण रोपी ॐ राम विमुख त्राता नहिं कोपी ॥७॥
शंकर सहस विष्णु अज तोहीं ॐ सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥८॥

हनुमान्‌जी कहते हैं कि हे रावण ! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रामचन्द्रसे विमुख पुरुष की रक्षा करनेवाला कोई नहीं है ॥ ७ ॥ हजारों शंकर-विष्णु और ब्रह्माजी भी तुझसे रामचन्द्रके वैरी की रक्षा न करेंगे ॥ ८ ॥

दोहा—मोह मूल बहु शूलप्रद, त्यागहु तुम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायकहिं, कृपासिंधु भगवान ॥ २३ ॥

हे रावण ! जो अभिमान मोह की जड़ और बहुत से दुःखों का देने वाला है उसे तुम त्याग दो, कृपासिंधु रघुकुलनायक श्रीरामचन्द्रजी का भजन करो ॥२३॥

यद्यपि कह कपि अति हित वानी ॐ भक्ति-विवेक-धर्म-नय-सानी ॥१॥
बोला विहँसि अधम अभिमानी ॐ मिला हमहिं कपि गुरु बड़ज्ञानी ॥२॥

यद्यपि हनुमानजी बड़ी भलाई की बात कह रहे हैं जो भक्ति, ज्ञान और धर्म से भरी हुई है ॥ १ ॥ परन्तु ऐसी सुन्दर वाणी को सुनकर भी अभिमानी रावण हँसकर कहने लगा कि यह बन्दर तो मुझे बड़ाही ज्ञानी गुरु मिला ॥२॥

मृत्यु निकट आई खल तोहीं ॐ लागेसि अधम सिखावन मोहीं ॥३॥
उलटा होइ कहा हनुमाना ॐ मति भ्रम तोरि प्रगट मैं जाना ॥४॥

हे दुष्ट बन्दर ! तेरी मौत निकट आगई है इसी लिये तो तू मुझे उपदेश देने लगा ॥ ३ ॥ इसे सुन हनुमानजी ने कहा कि इसका उलटा होगा अर्थात तेरी मौत निकट आई है) तुझे मतिभ्रम हो गया है ऐसा मुझे ज्ञात होता है ॥ ४ ॥

सुनि कपि वचन बहुत रिसियाना ॐ वेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ॥५॥
सुनत निशाचर मारन धाये ॐ सचिवन सहित विभीषण आये ॥६॥

ऐसे हनुमान्‌जीके वचन सुन रावण बहुत शर्मा गया और क्रोधमें आकर निशाचरोंसे कहने लगा कि इस मूर्ख बन्दरका प्राण शीघ्र ले लो (इसे मार डालो) यह सुन कर निशाचर लोग मारनेके लिये दौड़े, उसी समय मंत्रियोंके साथ विभीषण आगये।

नाइ शीश करि विनय बहुता ॐ नीति विरोध न मारिय दूता ॥७॥

आन दंड कछु करिय गुसाईं ॐ सबही कहा मंत्र भल भाई ॥८॥

बड़े आदर के साथ शीश नवा कर और बहुत विनय कर विभीषण ने रावणसे कहा कि हे महाराज ! यह दूत है इसे मारना उचित नहीं, क्योंकि यह बात नीतिके विरुद्ध है ॥७॥ इस कारण इसे मौतके अतिरिक्त कोई और दण्ड दीजिये, सब राक्षसों ने कहा यह सलाह ठीक है ॥ ४॥

सुनत विहँसि बोला दशकंधर ॐ अंग भंग करि पठवहु बन्दर ॥९॥

विभीषण का यह वचन सुन रावण हंस कर कहने लगा कि अच्छा इस बन्दर को किसी अङ्गसे हीन करके जाने दो ॥ ९ ॥

दोहा—कपि कर ममता पूँछ पर, सबहि कहा समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ ॥२४॥

और फिर रावण सब निशाचरों से समझा कर यों कहने लगा कि बन्दर की प्रीति पूँछ पर अधिक रहती है सो उसीको तेल में डुबा कर कपड़ा बाँध दो और फिर आग लगा दो ॥ ४ ॥

पूँछहीन बंदर जब जाइहि ॐ तब शठ निज नाथहिं लै आइहि॥१॥
जिनकी कीन्हेसि अमित बड़ाई ॐ देखौं धौं तिनकी प्रभुताई ॥२॥

जब यह बन्दर पूँछहीन (बाँडा) होकर जायगा तब यह अपने स्वामीको ले आवेगा और जिनकी इसने अधिक बड़ाई की है मैं उसकी प्रभुताई देखना चाहता हूँ ।

वचन सुनत कपि मन मुसुकाना ॐ भइ सहाय शारद मैं जाना ॥३॥
यातुधान सुनि रावण वचना ॐ लागे रचन मूढ़ सोइ रचना ॥४॥

रावणके ऊपर कहे हुए वचन सुन कर हनूमान्जी मनमें प्रसन्न हुए और कहने लगे कि ज्ञात होता है सरस्वतीजीने सहायता की ॥३॥ रावणके ऐसे वचन सुन मूर्ख निशाचर लोग वही रचना करने लगे अर्थात् पूँछ जलानेका सामान करने लगे ॥४॥

रहा न नगर वसन घृत तेला ॐ बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ॥५॥
कौतुक कहँ आये पुरवासी ॐ मारहिं चरण करहिं बहु हाँसी ॥६॥

उस समय लंका में वसन (वस्त्र) घी, तेल नहीं रहा और हनुमान्जीने यह खेल किया कि अपनी इतनी पूँछ लम्बी बढ़ा दी जिसमें लपेटते २ घी, तेल और कपड़े सब खतम होगये ॥५॥ नगरके लोग तमाशा देखने आये, हनुमान्जीको लात मारते हैं और नाना प्रकारकी हँसी करते हैं ॥ ६ ॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी ॐ नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ॥७॥

ढोल बज रहे हैं, लोग तालियाँ पीट रहे हैं इस प्रकार हनुमान्जीको सारी लंका

में घुमा फिरा कर फिर पूँछमें आग लगा दी ॥ ७ ॥

पावक जरत देखि हनुमंता ॥ भयउ परम लघु रूप तुरंता ॥८॥
निबुकि चढ़ेउ पुनि कनक अटारी ॥ भई सभीत निशाचर नारी ॥९॥

पूँछमें आग लगी हुई देखकर तुरन्त हनुमान्‌जीने छोटा रूप धारण कर लिया ॥८॥ और फिर कूदकर सोनेकी अटारियों पर चढ़ गये जिसे देख निशाचरोंकी स्त्रियाँ मारे डरके काँपने लगीं ॥ ९ ॥

दोहा—हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले पवन उन्चास।
अट्टहास करि गर्जेऊ, कपि बढ़ि लाग अकास ॥ २५ ॥

भगवान की प्रेरणासे उस समय उन्चासों पवन चलने लगे ऐसी सहायता देख हनुमान्‌जी खिलखिला कर हँसे और बड़े जोर से गर्जे और शरीरको इतना बढ़ाया कि वह आकाशसे जा लगा ॥ २५ ॥

अथ क्षेपक

चढ्यो फलाँगि धाम धूम लामको उठायऊ ॥ मनों अकाश ते नदी कृशानुकी बहायऊ
कि लंक लीलनेको काल जीहसी पसारेहू ॥ किधौं अनी महान शूर सैफली निकारेहू
किधौं सुरेश चापकी कलाप दामिनी महैं ॥ विलोकि यातुधान ते परात भे जहँ तहँ
फिराय लाय लाय ऐन मैनसे लगे वरै ॥ गयन्द छोरि बाजि छोरि ऊँट छोरिये खरै
अनेक बाल बालकी सुतात मात बोलहीं ॥ बचाय लीजिये हमें समय समान डोलहीं
अनेक नारि मारि रिंभ डिंभ काढ़ि लावहीं ॥ अनेक डारि डारि वस्तु वारि लेन धावहीं
अनेक कंत वीर वीर ते पुकारि यों कहैं ॥ उठाय लेहु लाल माल जाल दे परो तहैं
बिलोकि देव यों कहैं कपीश यज्ञसी ठनी ॥ सुरारि सौंज लंक कुण्ड हाँक स्वाहसी भनी
गिरैं कँगूर दूर तें तबै कहै मंदोदरी ॥ विहाय लोकलाज कानि भागती न क्योंअरी
अरे अकंप नातिकाय कंटकी सहोदरं ॥ लेवाहु लेउ अर्द्ध गाति पूत नाति सोदरं
अनेक बार मैं कही बुझायहू विभीषणं ॥ नमामि दाढ़ि जार ने कुठार वंश तीक्ष्णं
बधू जो कुम्भकर्णकी पलारि पाणि भाषियै ॥ दुहाइ रामचन्द्र केरि मोर कंत राखियै
अनेक धाय धाय जाय रावणै सुनायहू ॥ विचारि वीर मेघनाद से बली पठायहू
अनेक अस्त्रशस्त्र लाय आय मारने लगे ॥ घुमाय दीन बालधी पुकारि क्रूर से भगे
सुमंत्र जाय यों कही बड़ो बलाय कीश है ॥ निशंक बंकहू बड़ो सुनो न ऐस दीश है
विशालज्वालजालिकोपि मेघबोलियोंकही ॥ बुताइ देहु आगि रे बहाइ जंतुको सही
भले बुलाय मेघ आय पाथ पुंज छाँड़ेऊ ॥ यथा सनेह पाय चौगुनो कृशानु बाढ़ेऊ
लगी जु अंग अंग बाणप्राण लै भगे सबै ॥ निहारि रीति माल्यवान स्यान बोलियो तबै
न आहियाहिअग्नि!आहिईशकीजुवामता ॥ समीर स्वाँस सीयकी जु रामरोष मामता

विडौल ब्रह्म विष्णु रुद्र आदि देव जौन हैं ॥ डरात मोहिं सर्व वंग ईश और कौन हैं
बुलाय कालते कह्यो लँगूर लाइ मारिकै ॥ बटोरि भूत प्रेत यक्ष दण्ड चण्ड धारिकै
विलोकि बात जात घात कोन सैन तासुको ॥ उठाय गालमें धस्यो परयो खँभार जासुको
समेत शंभु भात रामदास पास आयऊ ॥ सभीत पंकजासनादि बीनती सुनायऊ

दोहा—देहु छोड़ि यमराज कहँ, यह बिनती यक मोरि।
परवश आयो लरन सुनि, दीन्ह गाल ते छोरि॥ इति क्षेपक

देह विशाल परम हरुआई ॥ मंदिर ते मंदिर चढ़ि जाई ॥१॥
जरा नगर, भये लोग बिहाला ॥ लपट झपट बहु कोटि कराला ॥२॥

महावीरजी का शरीर बहुत बड़ा पर हलका था, वे इस मकानसे उस मकान पर दौड़ कर चढ़ जाते थे ॥ १ ॥ लंका जल रही थी और उसमें से करोड़ों कराल लपटें निकल रही थीं जिससे पुरवासी बहुत व्याकुल हो रहे थे ॥ २ ॥

तात मात सब करहिं पुकारा ॥ यहि अवसर को हमहिं उबारा ॥३॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई ॥ वानर रूप धरे सुर कोई ॥४॥

सब अपने २ माता पिता आदि को पुकार रहे हैं और कहते हैं कि इस समय हमें इस संकट से कौन बचावेगा ॥ ३ ॥ हमने पहले ही कहा था कि यह बन्दर नहीं है, देवता बन्दर का रूप धारण करके आया है सो वही बात प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है

साधु अवज्ञा कर फल ऐसा ॥ जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥५॥
जारा नगर निमिष इकमाहीं ॥ एक विभीषण कर गृह नाहीं ॥६॥

महात्माओं के अपमान करने का फल ऐसा ही होता है, इस प्रकार नगर जला जैसे बिना मालिक का हो ॥ ५ ॥ महावीरजी ने एक क्षण मात्र में सारा नगर जला दिया, केवल एक विभीषण का मन्दिर नहीं जलाया ॥ ६ ॥

ताकर दूत अनल जेहिं सिरजा ॥ जरा न सो तेहि कारण गिरजा ॥७॥
उलटि पलटि लंकाकपि जारी ॥ कूदि परा पुनि सिंधु मँझारी ॥८॥

महादेवजी कहते हैं कि हनुमान्‌जी तो उसी प्रभु के दूत थे जिन्होंने अग्नि को बनाया था (इस कारण हनुमान्‌जी को अग्नि कुछ बाधा न पहुँचा सकी) हनुमान्‌जी ने लंका को उलट पलट कर अर्थात् बार बार घूम कर जलाया और फिर समुद्र के अन्दर कूद पड़े

दोहा—पूँछ बुझाई खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता के आगे, ठाढ़ भयो कर जोरि॥२६॥

फिर हनुमान्‌जी पूछ बुझा थकावट दूर कर और छोटा सा रूप बना श्रीजानकीजीके आगे हाथ जोड़ कर खड़े हुए ॥ २६ ॥

मातु मोहिं दीजै कछु चीन्हा ॥ जैसे रघुनायक मोहिं दीन्हा ॥१॥
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ ॥ हर्ष समेत पवनसुत लयऊ ॥२॥

और सीताजीसे कहने लगे हे माता! मुझे कुछ निशानी पहिचानके हेतु दो जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने (मुद्रिका) दी थी ॥१॥ तब सीताजीने चूड़ामणि (शीशफूल) उतार कर देदिया जिसे हनूमान्‌जीने प्रसन्नता के साथ ले लिया ॥ २ ॥

कहेउ तात अस मोर प्रणामा ॥ सब प्रकार प्रभु पूरण-कामा ॥३॥
दीनदयालु विरद संभारी ॥ हरहु नाथ मम संकट भारी ॥४॥

हे तात! प्रभुसे मेरा प्रणाम कह कर ऐसा कहना कि आप तो सब प्रकारसे पूर्णकाम हैं आपको किसी प्रकारकी इच्छा नहीं है ॥ ३ ॥ परन्तु आप अपने इस (दीनदयालु) प्रण की रक्षा कर मेरे इस भारी संकटको दूर करो ॥ ४ ॥

तात शक्रसुत कथा सुनायहु ॥ बाण प्रताप प्रभुहिं समुझायहु ॥५॥
मास दिवस महँ नाथ न आवहिं ॥ तौ पुनि मोहिं जियत नहिं पावहिं ॥६॥

हे तात! इन्द्रके पुत्र जयंत की कथाका स्मरण दिलाना और प्रभुको बाण का प्रताप समझा कर कहना कि आपने तिनके के बाणसे जयंत को परास्त किया था ॥५॥ सो यदि हे नाथ! आप महीने भरमें न आवेंगे तो मुझे जीवित नहीं पावेंगे।

कहु कपि केहि विधि राखौं प्राना ॥ तुमहूँ तात कहत अब जाना ॥७॥
तुमहिं देखि शीतल भइ छाती ॥ पुनि मोकहँ सोइ दिन सोइ राती ॥८॥

हे कपि! मैं किस तरहसे अपने प्राण रक्खूँ, तुमभी तो अब यहांसे जानेके लिये कहते हो ॥७॥ तुम्हें देख कर कुछ मेरी छाती ठंढी हुई थी, अब फिर मेरे लिये दिन और रात दोनों बराबर हैं ॥ ८ ॥

दोहा—जनक सुतहिं समुझाइ करि, बहु विधि धीरज दीन्ह ।
चरण कमल शिर नाइ कपि, गमन राम पहँ कीन्ह ॥२७॥

हनुमान्‌जी सीताजीको बहुत प्रकारसे समझा बुझा धीरज दे और उनके चरण कमलोंको शीश नवा श्रीरामचन्द्रजीके पास चल दिये ॥ २७ ॥

चलत महा धुनि गर्जेउ भारी ॥ गर्भ स्रवेउ सुनि निशिचर नारी ॥१॥
लांघि सिंधु यहि पारहिं आवा ॥ शब्द किलकिला कपिन्ह सुनावा ॥२॥

हनुमान्‌जीने चलते समय बड़े जोर की गर्जना की जिसे सुन निशाचरों की स्त्रियों के गर्भ गिर गये ॥१॥ और समुद्र लांघ इस पार आ बानरोंको बड़े जोर की आनंद ध्वनि सुनाई ॥ २ ॥

राका दिन पहुँचेउ हनुमंता ॥ धाय धाय कपि मिले तुरन्ता ॥३॥

हर्ष सब बिलोकि हनुमाना ॥ नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना ॥४॥

कार्तिकी पूर्णिमाके दिन लंकासे लौट कर आये और उन्हें देख दौड़ कर बंदर तुरंत मिलने लगे हनुमान्‌जीको देख सब बड़े प्रसन्न हुये और अपना नया जन्म समझा

मुख प्रसन्न तनु तेज बिराजा ॥ कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा ॥५॥
मिले सकल अति भये सुखारी ॥ तलफत मीन पाव जिमि बारी ॥६॥

हनुमान्‌जीका मुख प्रसन्न था, शरीरमें तेज विराजमान था जिसे देखकर वानर गण समझ गये कि यह श्रीरामचन्द्रजीका कार्य पूर्ण करके आये हैं ॥५॥ इस कारण सब वानर बड़ी प्रसन्नता से सुखी होकर इस प्रकार मिले जैसे तड़फती हुई मछली को पानी मिल जावे ॥ ६ ॥

चले हर्षि रघुनायक पासा ॥ पूछत कहत नवल इतिहासा ॥७॥

सब वानर प्रसन्नतासे नाना प्रकार की कथायें कहते और पूछते हुये श्री रामचन्द्रजीके पास चल दिये ॥ ७ ॥

तब मधुवन भीतर सब आये ॥ अंगद सहित मधुर फल खाये ॥८॥

तब सब वानर मधुवनके भीतर आये और युवराज अंगदके सहित मीठे मीठे फल खाने लगे ॥ ८ ॥

रखवारे जब बरजन लागे ॥ मुष्टि प्रहार करत सब भागे ॥९॥
मार्ग पञ्चमी अरु भृगु बारा ॥ मधुवन के रक्षक संहारा ॥१०॥

जब मधुवनके रखवारे उन्हें मना करने लगे तो मारे मुक्कोंके उन्हें भगा दिया ॥९॥ अगहन बदी पंचमी शुक्रवारके दिन मधुवनके राक्षसों को मारा ॥१०॥

दोहा—जाइ पुकारे सकल ते, बन उजार युवराज।
सुनि सुग्रीवहि हर्ष अति, करि आये प्रभु काज ॥२८॥

वह सब रखवारे भाग कर सुग्रीवके पास जा पुकार कर कहने लगे कि युवराज अंगदजीने सब फुलवाड़ी उजाड़ दी। जिसे सुन सुग्रीवको बड़ा आनंद हुआ कि ज्ञात होता है यह सब रामचन्द्रजीका कार्य कर आये हैं ॥ २८ ॥

जो न होत सीता सुधि पाई ॥ मधुवन के फल सकहिं कि खाई ॥१॥
यहि बिधि मन बिचार कर राजा ॥ आइ गये कपि सहित समाजा ॥२॥

यदि इन लोगोंको सीताजीकी खबर न मिली होती तो मधुवनके फल कैसे खा सकते थे ॥१॥ राजा सुग्रीव इस प्रकार अपने मनमें विचार कर ही रहे थे कि सम्पूर्ण वानरोंका समाज वहाँ आगया ॥ २ ॥

आइ सबन नाये पद शीशा ॥ मिले सबहिं अति प्रेम कपीशा ॥३॥

पूछी कुशल कुशल पद देखी ॥ राम कृपा भा काज विशेखी ॥४॥

सब बानरोंने आकर सुग्रीवके चरणों में शीश नवाया और सुग्रीव भी सम्पूर्ण बानरोंसे बड़े प्रेमके साथ मिले ॥ ३ ॥ सुग्रीवने पूछा कि कहो सब कुशल तो है ! बानरोंने उत्तर दिया महाराज ! आपके चरणोंके देखनेसे सब कुशल है, श्रीरामजीकी कृपासे कार्य उत्तम रीतिसे पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना ॥ राखे सकल कपिन्ह कर प्राना ॥५॥
सुनि सुग्रीव बहुरि उठि मिलेऊ ॥ कपिन्हसहितरघुपतिपहँचलेऊ ॥६॥

हे नाथ ! हनुमान्‌जीने कार्य पूरा किया और सम्पूर्ण बानरोंकी प्राण रक्षा की ॥५॥ ऐसा वचन सुन वानरराज सुग्रीव फिर उठ कर हनुमान्‌जीसे मिले और सम्पूर्ण बन्दरों सहित श्रीरामचन्द्रजीके पास चले ॥ ६ ॥

राम कपिन कहँ आवत देखा ॥ किये काज मन हर्ष विशेखा ॥७॥
फटिक शिला बैठे दोउ भाई ॥ परे सकल कपि चरणन जाई ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीने बानरोंको आते हुए देखा जो कि कार्य पूर्ण किये हुए बड़े प्रसन्न चित्त थे ॥ ८ ॥ दोनों भाई स्फटिक मणिकी चट्टान पर बैठे हुए थे, वहीं संपूर्ण बानरगण आकर चरणों पर गिरे ॥ ८ ॥

दोहा—षष्ठी दिन कपिपतिहिं मिलि, मुदित कहा सब हाल ।
सप्तमि दिन आये सकल, जहँ रघुनाथ कृपाल ॥

छटठके दिन सुग्रीवसे मिलकर प्रसन्नतापूर्वक सब हाल कह सप्तमी के दिन सब बानर श्रीरामचन्द्रजीके पास आये ॥

दोहा—प्रीति सहित भेंटे सकल, रघुपति करुणापुञ्ज ।
पूँछेउ कुशल नाथ अब, कुशल देखि पद कञ्ज ॥

दयासागर श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण बानरोंसे प्रीति पूर्वक मिले और सबसे कुशल पूछी जिसे सुन सब बानरोंने कहा हे नाथ ! आपके कमल रूपी चरणों के देखने से सब प्रकार आनन्द है ॥ २९ ॥

जामवंत कह सुनु रघुराया ॥ जापर नाथ करहु तुम दाया ॥१॥
ताहि सदा शुभ कुशल निरन्तर ॥ सुर नर मुनि प्रसन्न तेहि ऊपर॥२॥

तब जामवन्त कहने लगे हे रघुनाथजी सुनो ! हे नाथ ! जिसके ऊपर आप कृपा करते हो ॥१॥ उसका सदैव भला होता है और सदा कुशल बनी रहती है, सुर नर मुनि सब उस पर प्रसन्न रहते हैं ॥ २ ॥

सो विजयी विनयी गुण सागर ॥ तासु सुयश तिहुँ लोक उजागर ॥३॥

प्रभु की कृपा भयउ सब काजू ❀ जन्म हमार सफल भा आजू ॥४॥

और वही संसार में विजय प्राप्त कर सकता है, नम्रतारूपी भूषण और गुणों का सागर हो सकता है और उसी का उज्वल यश तीनों लोक में प्रसिद्ध हो सकता है ॥ ३ ॥ हे नाथ ! आपकी कृपा से सब काम पूर्ण होगया और हमारा जन्म भी आज ही सफल हुआ ॥ ४ ॥

नाथ पवनसुत कीन्ह जो करणी ❀ सो मुख लाखहु जाइ न बरणी ॥५॥
पवन तनय के चरित सुहाये ❀ जामवन्त रघुपतिहिं सुनाये ॥६॥

हे नाथ ! हनुमान्जीने जो कार्य किया है वह लाखों मुख होने पर भी वर्णन नहीं किया जासकता ॥ ५ ॥ ऐसा कह जामवन्तने हनुमानजीके मनोहर चरित्र श्रीरामचन्द्रजी को सुनाये ॥ ६ ॥

सुनत कृपानिधि मन अति भाये ❀ पुनि हनुमान हरषि हिय लाये ॥७॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी ❀ रहत करत रक्षा स्व प्रान की ॥८॥

जामवन्तके वचन श्रीरामचन्द्रजीको बहुत प्यारे लगे और उन्होंने हनुमानजीको प्रसन्नतापूर्वक हृदयसे लगा लिया ॥ ७ ॥ फिर हनुमानजीसे पूछने लगे कि हे तात ! जानकी किस प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षा करती है ॥ ८ ॥

दोहा—नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद यंत्रिका, प्राण जाहिं केहि बाट ॥३०॥

तब हनुमानजी कहते हैं कि रात दिन आपका नाम रूपी द्वाररक्षक पहरा देता है, और आपके ध्यानरूपी किवाड़ बन्द रहते हैं। नेत्रोंमें आपके चरणोंका ध्यानरूपी ताला सदा बन्द रहता है, इस कारण यदि प्राण निकलें तो किस राहसे होकर जावें अर्थात उनके लिये कोई मार्ग नहीं है ॥ ३० ॥

चलती बार कह्यो मोहि टेरी ❀ सुरति कराय शक्र-सुत केरी ॥१॥
चलत मोहिं चूड़ामणि दीन्हीं ❀ रघुपति हृदय लाय तेहि लीन्हीं ॥२॥

और चलते समय मुझे बुलाकर कहा कि प्रभुको इन्द्रके पुत्र जयंतके पराजित होनेका स्मरण दिलाना ॥ १ ॥ फिर मुझे यह चूड़ामणि भी चिन्ह स्वरूप दिया है, उसे श्रीरामचन्द्रजीने लेकर हृदयसे लगा लिया ॥ २ ॥

नाथ युगल लोचन भरि वारी ❀ वचन कह्यो कछु जनककुमारी ॥३॥
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरणा ❀ दीन बन्धु प्रणतारति हरणा ॥४॥

हे नाथ ! दोनों नेत्रोंमें आँसू भर सीताजीने कुछ दीन वचन कहे थे ॥३॥ सो यह कि लक्ष्मणजीके समेत प्रभुके चरण मेरी ओरसे पकड़ कर विनय करना कि आप

तो दुखियों के दुःख दूर करने वाले, प्रण की रक्षा करने वाले हैं, फिर मेरा दुःख क्यों नहीं दूर करते ॥ ४ ॥

मन क्रम वचन चरण अनुरागी ॥ केहि अपराध नाथ मोहिं त्यागी ॥५॥
अवगुण एक मोर मैं माना ॥ बिछुरत प्राण न कीन्ह पयाना ॥६॥

और यहभी कहना कि मैं तो मन, वचन और कर्मसे आपहीके चरणोंकी प्रीति रखने वाली दासी हूँ सो आपने किस अपराधके कारण मुझे त्याग दिया ॥ ५ ॥ परन्तु हां ! मुझमें एक भारी अवगुण विद्यमान है और उसे मैं स्वीकार भी करती हूँ कि आपके बिछुरतेही मेरे प्राण शरीरसे क्यों न निकल गये ॥ ६ ॥

नाथ सो नयनन कर अपराधा ॥ निसरत प्राण करहिं हठ बाधा ॥७॥
बिरह अनल तन तूल समीरा ॥ स्वांस जरै क्षण माँहि शरीरा ॥८॥

सो हे नाथ ! यह अपराध केवल नेत्रोंका है, क्योंकि जब प्राण निकलने लगते हैं तो यह हठ करके उसे रोक देते हैं क्योंकि नेत्रोंमें अभी आपके दर्शनोंकी आशा लगी हुई है ॥७॥ और आपका वियोग अग्निरूप मेरा शरीर रुईरूप स्वांस वायु रूप विद्यमान है जो कि क्षण भरमें शरीरको जला दे ॥ ८ ॥

नयन स्रवै जल निज हित लागी ॥ जरै न पाव देह बिरहागी ॥९॥
सीता की अति विपति विशाला ॥ बिनहिं कहे भल दीन दयाला ॥१०॥

परन्तु नेत्र अपने हितके कारण जल बरसा देते हैं जिसके कारण विरहरूपी अग्नि शांत होजाती है और शरीर जलनेसे बच जाता है ॥९॥ सो हे दीनों पर दया करनेवाले प्रभु, सीताकी उस विपत्ति का न कहना ही अच्छा है ॥ १० ॥

दोहा—निमिष निमष करुणायतन, जाहिं कल्प शत बीति ।
वेगि चलिय प्रभु आनिये, भुजबल खलदल जीति ॥३१॥

हे दयानिधान ! सीताजी को एक एक क्षण सैकड़ों कल्पके समान व्यतीत होता है, सो हे प्रभो ! आप जल्दी चल कर अपनी भुजाओंके बलसे उन दुष्टोंके कुल का नाश करके सीताजी को ले आइये ॥३१॥

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना ॥ भरि आये जल राजिव नयना ॥१॥
वचन काय मन मम गति जाही ॥ सपनेहु विपति कि चाहिय ताही ॥२॥

ऐसा सीताजीका दुख सुनकर सुखके मंदिर श्रीरामचन्द्रजीके कमलरूपी नेत्रों में आँसू आगये ॥१॥ कारण कि भक्तको दुखी देख प्रभु दुखी होजाते हैं सो जिसका प्रेम मन, वाणी और कर्म से श्रीरघुनाथजी के चरणों में लगा है उन्हें स्वप्न में भी दुःख न होना चाहिये ॥ २ ॥

कह हनुमान विपति प्रभु सोई ॐ जब तव सुमिरन भजन न होई ॥३॥
कितक बात प्रभु यातुधानकी ॐ रिपुहिं जीति आनिये जानकी ॥४॥

हनूमानजी कहते हैं कि हे नाथ ! विपत्ति तभी तक है जब तक आपका सुमिरण भजन न हो अथवा विपत्ति उसी मनुष्यको हो सकती है जिससे आपका सुमिरन भजन नहीं किया जा सकता ॥३॥ और राक्षसोंके लिये क्या चिन्ता है, शत्रुको जीत कर सीताको ले आये ॥ ४ ॥

सुनु कपि तोहिं समान उपकारी ॐ नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥५॥
प्रति-उपकार करौं का तोरा ॐ सन्मुख होइ न सकत मन मोरा ॥६॥

रघुनाथजी कहते हैं कि हे हनूमान ! सुनो तुम्हारे समान मेरा उपकार करनेवाला कोई देवता, मुनि, मनुष्य अथवा देहधारियोंमें नहीं है ॥ ५ ॥ मैं तुमको इसका क्या बदला दूँ ! तुम्हारे इस उपकार के कारण मेरा मन तुम्हारे सामने नहीं होसकता।

सुनु कपि तोहिं उऋण मैं नाहीं ॐ देखेउँ करि विचार मन माहीं ॥७॥
पुनि २ कपिहिं चितव सुरत्राता ॐ लोचन नीर पुलकि अति गाता ॥८॥

हे हनुमान ! सुनो मैं तुम्हारे इस उपकार के ऋण से उऋण नहीं हो सकता, मैंने अपने मनमें विचार कर देख लिया है ॥ ७ ॥ ऐसा कह बारम्बार रघुनाथजी हनुमानजीकी ओर देखने लगे और उनका शरीर पुलकित होगया, नेत्रोंमें आँसू आगये और शरीर की सुधि न रही ॥ ८ ॥

दोहा—सुनि प्रभु वचन विलोकि मुख, हृदय हर्ष हनुमन्त ।
चरण परेउ प्रेमाकुल, त्राहित्राहिभगवन्त ॥ ३२ ॥

ऐसे भगवान के वचन सुन और उनका मुख देख कर हनुमान्‌जी अपने मन में बहुत प्रसन्न हुये और यह कहते हुए चरणों पर गिर पड़े कि हे भगवन् ! मैं आपकी शरण हूँ ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ॥ ३२ ॥

बार । बार ।प्रभु चहत उठावा ॐ प्रेम मगन तेहि उठव न भावा ॥१॥
प्रभु पद पंकज कपिकर शीशा ॐ सुमिरि सो दशा मगन गौरीशा ॥२॥

बारम्बार श्रीरघुनाथजी हनुमानजी को उठाना चाहते हैं परन्तु हनुमानजी प्रेम में ऐसे मग्न हैं, उन्हें उठना अच्छा नहीं लगता ॥ १ ॥ भगवान के कमलरूपी चरणों पर हनुमानजी का शीश था सो उस दशा को स्मरण कर भगवान शंकर भी कथा कहते २ प्रेम में मग्न हो गये ॥ २ ॥

सावधान मन करि पुनि शंकर ॐ लागे कहन कथा अति सुन्दर ॥३॥
कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा ॐ कर गहि परम निकट बैठावा ॥४॥

फिर महादेवजी अपने मन को सावधान कर उस अति सुन्दर कथा को पार्वती-जी से इस प्रकार वर्णन करने लगे ॥ ३ ॥ कि हनूमानजी को उठाकर रामचन्द्रजी ने छाती से लगाया और हाथ पकड़ बहुत ही पास बिठा लिया ॥ ४ ॥

कहु कपि रावण पालित लङ्का ॐ केहि विधि दहेउ दुर्ग अति बङ्का ॥५॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना ॐ बोले वचन विगत अभिमाना ॥६॥

रघुनाथजी पूछने लगे कि हे वीर हनूमान! यह तो बताओ कि रावण से रक्षित उस लंका के दृढ़ किले को तुमने किस प्रकार जलाया ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न जानकर हनूमानजी अभिमानरहित वचन बोले ॥ ६ ॥

शाखा मृग की बड़ि मनुसाई ॐ शाखा ते शाखा पर जाई ॥७॥
लांघि सिन्धु हाटक पुर जारा ॐ निशिचरगण वधिविपिन उजारा ॥८॥
सो सब तव प्रताप रघुराई ॐ नाथ न कछुक मोरि प्रभुताई ॥९॥

कि हे नाथ! बन्दर को केवल इतना ही बूता होता है कि वह एक डाल से दूसरी डाल पर कूद सके ॥ ७ ॥ और मैंने जो समुद्र लाँघ कर सुवर्ण की बनी हुई लंका को जलाया और निशाचरों को मार कर फुलवाड़ी उजाड़ दी ॥ ८ ॥ सो हे स्वामी राम-चन्द्रजी यह कुछ मेरी प्रभुता नहीं थी, यह सबतो मैंने आपके प्रतापसे किया है ॥९॥

दोहा—ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जा पर तुम अनुकूल।
तव प्रताप बड़वानलहिं, जारि सकै खल तूल ॥ ३३ ॥

हे नाथ! जिसके ऊपर आप प्रसन्न हों अथवा आप की दया हो उसके लिये यह कार्य कुछ कठिन नहीं, क्योंकि आपके प्रताप से रुई भी अग्नि को भस्म कर सकती है ॥ ३३ ॥

सुनत वचन प्रभु बहु सुख माना ॐ मन क्रम वचन दास निज जाना ॥१॥
माँगु पवनसुत वर अनुकूला ॐ देउँ आजु तुम कहँ सुख मूला ॥२॥

ऐसे हनूमानजी के वचन सुन रामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुये और मनसा-वाचा-कर्मणा से इन्हें अपना दास जाना ॥ १ ॥ तब भगवान बोले—हे पवन पुत्र! जो तुम्हारी इच्छा हो वही वर माँगो, आज मैं तुम्हें सब सुखों का मूल रूप वर भी देने को तैयार हूँ ॥ २ ॥

नाथ भक्ति तव सब सुखदायनि ॐ देहु कृपा करि सो अनपायनि ॥३॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी ॐ एवमस्तु तब कह्यो भवानी ॥४॥

यह सुन हनूमान कहने लगे कि हे नाथ! आपकी भक्ति जो सब सुखों को देने वाली है और जो कठिनता से प्राप्त होती है उसे दीजिये ॥ ३ ॥ महादेवजी कहते

है कि हे पार्वती ! ऐसी सरल वाणी हनूमानजी की सुन रामचन्द्रजी ने एवमस्तु (ऐसा ही हो) कह दिया ॥ ४ ॥

उमा राम सुभाव जिन जाना ❀ ताहि भजन तजि भाव न आना ॥५॥
यह संवाद जासु उर आवा ❀ रघुपति चरण भक्ति तेहि पावा ॥६॥

महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! जिन्होंने रामचन्द्रजी के स्वभाव को जान लिया उन्हें भजन छोड़ कर दूसरी कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती ॥ ५ ॥ यह कथा अर्थात् महावीर और रामचन्द्र का संवाद जिसके हृदय में दृढ़ रीति से स्थिर हो जाता है वह रामचन्द्रजी के चरणों की भक्ति को अवश्य पा जाता है ॥ ६ ॥

सुनि प्रभु बचन कहैं कपि वृन्दा ❀ जय जय जय कृपालु सुखकंदा ॥७॥
तब रघुपति कपिपतिहिं बुलावा ❀ कहा चलै कर करहु बनावा ॥८॥

ऐसे श्रीरामचन्द्रजी के वचन सुन वानरों के समूह कहते हैं कि हे दयालु ! हे सुखकन्द श्रीरामचन्द्रजी, आपकी जय हो, जय हो ॥ ७ ॥ तब रघुनाथजी ने सुग्रीव को बुलाया और कहा कि अब चलने को तैयारी करो ॥ ८ ॥

अब बिलंब केहि कारण कीजै ❀ तुरत कपिन कहँ आयसु दीजै ॥९॥
कौतुक देखि सुमन बहु बर्षे ❀ नभ तें भवन चले सुर हर्षे ॥१०॥

अब देर किस लिये करते हो, शीघ्र ही वानरों को आज्ञा दो ॥ ९ ॥ यह कौतुक देख आकाश से देवता फूल बरसाने लगे, फिर सब देवता प्रसन्न हो होकर अपने २ घर को चल दिये ॥ १० ॥

दोहा—कपिपति बेगि बुलायऊ, आये यूथप यूथ।
नाना बरण अतुल बल, वानर भालु बरूथ ॥ ३४ ॥

सुग्रीव ने शीघ्र ही सबको बुलाया ! आज्ञा पाते ही सेनापतियों के झुण्ड के झुण्ड आ उपस्थित हुये जिनमें नाना प्रकारके रंग हैं, अतुलित बल है, ऐसे ही वानर और रीछों के झुण्ड आये ॥ ३४ ॥

प्रभु पद पंकज नावहिं शीशा ❀ गरजहिं भालु महाबल कीशा ॥१॥
देखी राम सकल कपि सैना ❀ चितव कृपा करि राजिव नैना ॥२॥

और सब बलवान बन्दर और रीछ आकर श्रीरामचन्द्रजी के कमलरूपी चरणों को शीश नवाते और गर्जना करते हैं ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ने बन्दरों की सारी सेना को अपने कमलरूपी नेत्रों से कृपादृष्टिपूर्वक अवलोकन किया ॥ २ ॥

राम कृपा बल पाइ कपिन्दा ❀ भये पक्षयुत मनहुँ गिरिन्दा ॥३॥
मार्ग कृष्ण बसु तिथि जब आई ❀ उत्तर फाल्गुनि नखत सोहाई ॥४॥

श्रीरामजी की कृपा का बल पाकर बानर ऐसे बली हो गये कि मानों वे पंख सहित बड़े २ पहाड़ हों और उड़ने की आकांक्षा कर रहे हों ॥ ३ ॥ और जब अगहन बदी अष्टमी को सुन्दर उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का योग था ॥ ४ ॥

जब अपयोग एक नहिं आनू ॐ शुचि शुभ योग मध्य दिन भानू ॥५॥
हर्षि राम तब कीन्ह पयाना ॐ शकुन भये सुन्दर शुभ नाना ॥६॥

और जिस समय किसी प्रकार का भी कुयोग न था, सुन्दर अच्छे योग में दो पहर के समय ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ने प्रसन्न होकर गमन किया, उस समय बड़े बड़े सुन्दर शुभ शकुन हुये ॥ ६ ॥

जासु सकल मंगल मय नीती ॐ तासु पयान शकुन यह रीती ॥७॥
प्रभु पयान जाना वैदेही ॐ फरके वाम अंग शुभ तेही ॥८॥

जिसके सकल कार्य मंगलमय और नीति से भरे हुए होते हैं उसके गमन के समय शकुन भी शुभ हुये ॥ ७ ॥ जो रामचन्द्रजी के गमन के समय ही लंका में श्रीजानकीजी के बायें अंग जो कि मंगलसूचक हैं फरकने लगे, इससे सीताजी ने प्रभु का पयान जान लिया ॥ ८ ॥

जो जो शकुन जानकिहिं होई ॐ अशकुन भयो रावणहि सोई ॥९॥
चला कटक को बरणै पारा ॐ गर्जहिं बानर भालु अपारा ॥१०॥

जो जो शकुन जानकीजीको हुए उसके विरुद्ध वही अशकुन रावणको हुए अर्थात् उसके भी वाम अंग फड़के, जो मनुष्यके लिये अशुभसूचक हैं ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी की सेना का विस्तार इतना था कि कोई उसका पार नहीं पासकता और उसमें बानर और भालु गर्जना कर रहे थे ॥ १० ॥

नख आयुध गिरि पादप धारी ॐ चले गगन महँ इच्छाचारी ॥११॥
केहरि, नाद भालु कपि करहीं ॐ डगमगाहिं दिग्गज चिकरहीं ॥१२॥

और उन बानर और भालुओं के केवल नखही हथियार हैं, उनमें से कोई वृक्ष कोई पर्वत धारण किये हुए पृथ्वी अथवा आकाश में इच्छानुसार जारहे हैं ॥ ११ ॥ और उन बानर भालुओंके नादसे दिशाओंके हाथी डगमगाते और चिंघारते हैं जिससे ऐसा शोर हुआ ॥ १२ ॥

छन्द—चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हर्ष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कौशलनाथ गुण गण गावहीं ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी के गमन समय पृथ्वी कांपने लगी, दिग्गज चिंघारने लगे, पहाड़ कांप उठे और समुद्रमें खलबली मच गई। सूर्य चन्द्रमा मनमें बड़े प्रसन्न हुए और देवता, मुनि, नाग, किन्नर सब दुःखोंसे छूट गये और करोड़ों बलवान बन्दर इधर उधर गर्जना करते हुए दौड़ने लगे सब हे प्रबल प्रतापवाले कौशलनाथ श्रीरामचन्द्र जी! आपकी जय हो ऐसा कह कह कर गुणानुवाद गाने लगे ॥ ४ ॥

सहि सक न भार अपार अहिपति बार बार विमोहई।
गहि दशन पुनि २ कमठ पीठ कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति आनि परम सोहावनी।
जनु कमठ खप्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी ॥५॥

शेषनागजी उस अपार भार को सहन नहीं कर सकते, इस कारण बार बार मोहित हो जाते हैं और इसी कारण कछुएकी कठोर पीठको बार बार अपने दांतोंसे पकड़कर इस प्रकार शोभित होते हैं जैसे रामचन्द्रजीके गमन समयको सुन्दर शोभायमान जानकर मनों सर्पराज उस तिथिको अटल करने के लिये कछुएकी पीठ पर दांतों से खोद रहे हैं ॥ ५ ॥

दोहा—यहि विधि जाय कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु विपुल कपि वीर ॥३५॥

इस प्रकारसे कृपाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी जाकर समुद्रके किनारे उतरे और बलवान वानर और रीछ योधा इधर उधर फल आदि खाने लगे ॥ ३५ ॥

उहां निशाचर रहहिं सशंका ॥ जब ते जारि गयो कपि लंका ॥१॥
निज निज गृह सब करें विचारा ॥ नहिं निशिचर कुल केर उबारा ॥२॥

और अब वहां अर्थात् लंकामें जबसे हनुमान्‌जी उसे जलाकर आये हैं निशाचर लोग हर समय बड़े भयभीत रहते हैं ॥१॥ सब अपने २ घरोंमें बैठकर यही विचार किया करते हैं कि अब निशाचरवंशके बचनेका कोई उपाय नहीं है ॥२॥

जासु दूत बल बरणि न जाई ॥ तेहि आये पुर कवन भलाई ॥३॥
दूतिन सन सुनि पुरजन बानी ॥ मंदोदरी हृदय अकुलानी ॥४॥

क्योंकि हे भाई! जिसके एक दूतका बल वर्णन नहीं किया जाता उसके आने पर नगरकी कौनसी भलाई होगी अर्थात कोई भलाई न होगी क्योंकि वह न जाने कितना बली होगा ॥३॥ दूतियोंके मुखसे नगर निवासियोंके ऐसे भयभीत वचन सुन मन्दोदरी अपने हृदयमें बहुत घबराने लगी ॥४॥

रही जोरि कर पति पद लागी ॥ बोली बचन नीति रस पागी ॥५॥

कन्त करष हरि सन परिहरहू ⊛ मोर कहा अति हित चित धरहू ॥६॥

मन्दोदरी पतिके चरण छूकर हाथ जोड़ नीतियुक्त वचन इस प्रकार कहने लगी ॥५॥ कि हे नाथ! श्रीरामचन्द्रजी से बैर छोड़ दो और मेरे इन अति हितकारी वचनों को चित्तमें धारण करो ॥६॥

समुझत जासु दूत की करनी ⊛ स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी ॥७॥
तासु नारि निज सचिव बुलाई ⊛ पठवहु कंत जो चहहु भलाई ॥८॥

देखो जिनके दूतके कार्यको स्मरण करनेसे निशाचरियोंके गर्भ गिर जाते हैं ॥७॥ यदि अपनी भलाई चाहो तो उनको स्त्रीको अपना मंत्री बुलाकर उनके पास भेज दो

तव कुल कमल विपिन दुखदाई ⊛ सीता शीत निशा सम आई ॥९॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें ⊛ हित न तुम्हार शंभु अज कीन्हें ॥१०॥

हे नाथ! आपके कमलरूपी कुलके लिये सीता शीतकालकी रात्रिरूप दुखदाई अर्थात् जिस प्रकार शीतकाल की रात्रि कमल का नाश कर देती है इसी प्रकार यह सीता तुम्हारे कमलरूपी कुलका नाश कर देगी ॥ ९ ॥ इस कारण हे नाथ! सुनो बिना सीता को लौटा दिये महादेव और ब्रह्माजी के सहायता करने पर तुम्हारी भलाई नहीं हो सकती ॥ १० ॥

दोहा—राम बाण अहिगण सरिस, निकर निशाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तबहिं लगि, यतन करहु तजि टेक ॥

रामचन्द्रके बाण कराल सर्पों के समान हैं और निशाचरों के समूह मेंढकों के समान हैं सो जब तक यह सर्परूप बाण इन मेढ़करूप निशाचरोंका संहार नहीं करते तब तकही तुम अपना हठ छोड़कर इसका उपाय करलो अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीसे जा मिलो

श्रवण सुनत शठ ताकी वाणी ⊛ विहँसा जगत विदित अभिमानी ॥१॥
सभय स्वभाव नारि कर साँचा ⊛ मंगल माँहि अमंगल राँचा ॥२॥

ऐसे मन्दोदरीके शुभ वचन कानोंसे सुन संसारमें प्रसिद्ध अभिमानी रावण हँसा और कहने लगा ॥१॥ सचमुच स्त्रियों का स्वभाव बड़ाही डरपोक होता है, जिसके कारण तू इस मंगल समयमें भी अमंगल रच रही है ॥ २ ॥

जो आवै मर्कट कटकाई ⊛ जियहिं बिचारे निशिचर खाई ॥३॥
कंपहिं लोकप जाके त्रासा ⊛ तासु नारि सभीत बड़ि हासा ॥४॥

यदि यहां वानरों की सेना आवे तो बेचारे निशाचर उसे खाकर अपना पेट पालेंगे अथवा यदि वानर सेना यहां आवेगी तो क्या बेचारी जीवित रहेगी, उसे तो निशाचर खा जायँगे ॥३॥ और हे प्रिये! देखो जिसके डरके कारण दिग्पाल थर थर

कांपते हैं उसकी स्त्री डर जाय, यह बड़ी हँसी और लज्जा की बात है ॥ ४ ॥

अस कहि विहँसि ताहि उर लाई ॐ चलेउ सभा ममता अधिकाई ॥५॥
मंदोदरी हृदय कर चीता ॐ भयो कंत पर विधि विपरीता ॥६॥

रावण ऐसा कह कर मन्दोदरीको हृदयसे लगा हँस कर बड़े अभिमान के साथ सभाको चला गया ॥ ५ ॥ मन्दोदरी हृदय में विचार करने लगी कि अब पति पर विधाता उल्टा होगया है ॥ ६ ॥

बैठेउ सभा खबरि अस पाई ॐ सिंधु पार सेना सब आई ॥७॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू ॐ ते सब हँसे मष्ट करि रहहू ॥८॥

रावण सभामें आकर बैठा ही था कि उसे यह खबर मिली कि बन्दरोंकी सारी सेना समुद्रके उस पार (किनारे) तक आ गई है ॥७॥ तब मंत्रियोंसे पूछने लगा कि जो योग्य सलाह हो सो कहो, तब सब मंत्रीगण हँसे और कहने लगे कि चुप होरहो

जितेउ सुरासुर तब श्रम नाहीं ॐ नर वानर केहि लेखे माहीं ॥९॥

जब आपने देवता और दैत्योंको वशमें कर लिया तब तो कुछ क्लेश ही नहीं हुआ, अब यह मनुष्य और बन्दर किस गिनतीमें हैं जो इनके लिये सलाह की जाय ॥९॥

दोहा—सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आश।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ वेगही नाश ॥ ३७ ॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि मंत्री, वैद्य, गुरु, यदि ये तीनों भय अथवा किसी लोभके वश होकर मनभावनी (ठकुर सोहाती) कहें तो राज्य, शरीर और धर्म इन तीनोंका शीघ्रही नाश हो जाता है ॥३७॥

सोइ रावण कहँ बनी सहाई ॐ अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ॥१॥
अवसर जानि विभीषण आवा ॐ भ्राता चरण शीश तेहि नावा ॥२॥

वही ठकुर सोहाती रावणके यहाँ सहायता कर रही है अर्थात् मन्त्री गण मंत्र पूछने पर सुना सुना कर रावण की स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ ऐसा समय जानकर वहाँ विभीषणजी आये और रावणके चरणोंको शीश नवा कर प्रणाम किया ॥२॥

पुनि शिर नाइ बैठि निज आसन ॐ बोला वचन पाइ अनुशासन ॥३॥
जो कृपालु पूछहु मोहिं बाता ॐ मति अनुरूप कहौं मैं ताता ॥४॥

विभीषण शीश नवा कर अपने आसन पर बैठ गया और रावणकी आज्ञा पाकर वचन कहने लगा ॥३॥ कि हे दयालु भ्राता, जो आप मुझसे पूछते हैं तो हे तात मैं अपनी बुद्धिके अनुकूल कहता हूँ ॥ ४ ॥

जो आपन चाहै कल्याना ॐ सुयश सुमति शुभगति सुखनाना ॥५॥

तौ पर-नारि लिलार गोसाईं ॥ तजौ चौथि चन्दा की नाईं ॥६॥

जो आप अपना कल्याण, सुंदर यश, अच्छी मति और अच्छी गति और नाना प्रकार के सुख चाहो तो पराई स्त्रीको भादोंकी चौथके कलंकी चन्द्रमा के समान त्याग दो।

चौदह भुवन एक पति होई ॥ भूत द्रोह तिष्टै नहिं सोई ॥७॥
गुण सागर नागर नर जोऊ ॥ अल्प लोभ भल कहै न कोऊ ॥८॥

चाहे चौदहों भुवनका मालिक हो परन्तु प्राणीमात्रसे वैर करने पर वह ठहर नहीं सकता अथवा जो चौदहों भुवन का मालिक है उससे वैर करने पर कोई बच नहीं सकता ॥७॥ जो मनुष्य बड़ाही गुणी और चतुर हो परन्तु यदि वह थोड़ा भी लोभ करे तो उसे कोई अच्छा नहीं कहता ॥ ८ ॥

दोहा—काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पंथ।
सब परिहरि रघुवीर पद, भजहु कहहिं सद्ग्रन्थ ॥ ३८ ॥

हे नाथ ! काम, क्रोध, घमंड, लोभ ये सब नरकके देनेवाले मार्ग हैं इस कारण इन्हें छोड़ कर श्रीरामचन्द्रजी के चरणोंका भजन करो जैसा कि अच्छे अच्छे ग्रन्थ, वेद, शास्त्र आदिक कह रहे हैं ॥ ३८ ॥

तात राम नहिं नर भूपाला ॥ भुवनेश्वर कालहु के काला ॥१॥
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता ॥ व्यापक अजित अनादि अनन्ता ॥२॥

हे तात ! राम सांसारिक मनुष्य अथवा राजा नहीं हैं, वे तो संसारके मालिक और कालके भी काल हैं ॥१॥ परब्रह्म हैं रोगरहित हैं जन्ममरणसे परे हैं सर्वव्यापक हैं अजित हैं और उनका आदि अंत नहीं है ॥ २ ॥

गो द्विज धेनु देव हितकारी ॥ कृपासिन्धु मानुष तनु धारी ॥३॥
जन रंजन भंजन खल व्राता ॥ वेद धर्म रक्षक सुर त्राता ॥४॥

वे गऊ, ब्राह्मण, पृथ्वी और देवताओं के हितकारी दयाके समुद्र मनुष्यका रूप धारण किये हैं ॥ ३ ॥ वे भक्तोंको आनन्द देनेवाले, दुष्टोंके दलका नाश करनेवाले, वेद और धर्मके बचानेवाले और देवताओंकी रक्षा करनेवाले हैं ॥४॥

ताहि बैर तजि नाइय माथा ॥ प्रणतारति भंजन रघुनाथा ॥५॥
देहु नाथ प्रभु कहँ वैदेही ॥ भजहु राम बिनु काम सनेही ॥६॥

ऐसे कृपालु रघुनाथजीको वैर त्याग कर माथा नवाइये, क्योंकि वे शरणागत की रक्षा करनेवाले हैं ॥ ५॥ सो हे नाथ ! उनकी सीता उन्हें लौटा दो और जो रामचन्द्र बिना मतलब ही दूसरों पर दया करनेवाले हैं इनका भजन करो ॥ ६ ॥

शरण गये प्रभु काहु न त्यागा ॥ विश्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥७॥

जासु नाम त्रयताप नशावन ⊛ सोइप्रभुप्रगट समुझिजियरावन ॥८॥

शरण जाने पर श्रीरामचन्द्र ऐसे मनुष्यका भी त्याग नहीं करते जिसको सारे संसारसे वैर करने का पाप लगा हो ॥ ७ ॥ और जिसका नाम दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों पापोंका नाश करनेवाला है हे भाई रावण ! वही प्रभु पृथ्वी पर प्रकट है, इसको हृदयमें विचार करके देखो ॥ ८ ॥

दोहा—बार बार पद लागऊँ, विनय करौं दशशीश ।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोशलाधीश ॥३९॥

हे भाई रावण ! मैं बारम्बार आपके चरणों पर शिर रखके विनय करता हूँ कि आप प्रतिष्ठा, मोह और अहंकारको छोड़ कर श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो ॥ ३९ ॥

दोहा—मुनि पुलस्त्य निज शिष्य सन, कहि पठई यह बात ।
तुरत सो मैं तुम सन कही, पाइ सुअवसर तात ॥ ४० ॥

पुलस्त्यमुनि अर्थात् (बाबा) ने अपने शिष्य द्वारा यही बात कहला भेजी है सो हे भाई ! अच्छा समय पाकर मैंने शीघ्र ही आपसे कह सुनाई ॥४०॥

माल्यवन्त एक सचिव सयाना ⊛ तासु वचन सुनि अति सुख माना ॥१॥
तात अनुज तव नीति विभूषण ⊛ सोइ उर धरहु जो कहत विभीषण ॥२॥

वहाँ एक माल्यवंत नाम बड़ा चतुर और बुद्धिमान मंत्री बैठा था, वह विभीषण के वचन सुन बहुत ही प्रसन्न हुआ और हृदयमें सुख माना ॥१॥ और रावणसे कहने लगा कि हे तात ! तुम्हारा भाई बड़ा नीति-शिरोमणि है, आप उसी बातको हृदयमें धारण करो जो विभीषण कहता है ॥ २ ॥

रिपु उतकर्ष कहत शठ दोऊ ⊛ दूरि न करहु इहाँ है कोऊ ॥३॥
माल्यवन्त गृह गयउ बहोरी ⊛ कहेउ विभीषण पुनि कर जोरी ॥४॥

ऐसी बात सुन कर रावण क्रोधयुक्त होकर कहने लगा कि ये दोनों मूर्ख हैं, वैरी लड़ाई कर रहे हैं अरे कोई यहाँ है ! इनको निकाल कर दूर क्यों नहीं कर देते ॥३॥ ऐसा रावणका क्रोधयुक्त वचन सुन माल्यवन्त तो उठ कर अपने घर चला गया परन्तु विभीषण फिर हाथ जोड़ कर कहने लगा ॥ ४ ॥

सुमति कुमति सबके उर रहई ⊛ नाथ पुराण निगम अस कहई ॥५॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना ⊛ जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥६॥

कि हे तात ! वेद पुराण शास्त्र ऐसा कहते हैं कि सुमति और कुमति सभी के हृदयमें वास करती है ॥५॥ परन्तु जहाँ सुमति होती है वहां नाना प्रकारकी संपत्ति एकत्र होती है और जहाँ कुमति रहती है वहां अंतमें विपत्ति ही आती है ॥ ६ ॥

तव उर कुमति बसी बिपरीती ⊛ हित अनहित मानहुँ रिपु प्रीती ॥७॥
काल रात्रि निशिचर कुल केरी ⊛ तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥८॥

आपके हृदयमें तो उलटी कुमति बसी है जिसके कारण आप मित्रको शत्रु और शत्रुको मित्र समझते हैं ॥ ७ ॥ क्योंकि यह सीता निशाचरवंश के लिये प्रलयरूप रात्रि है, उसी सीता पर आपकी बड़ी प्रीति है ॥ ८ ॥

दोहा—तात चरण गहि माँगऊँ, राखहु मोर दुलार।
सीता दीजिय रामकहँ, अति हित होइ तुम्हार ॥४१॥

हे तात! मैं आपके चरण पकड़ कर यह माँगता हूं आप मेरे दुलार (हठ) को रखिये कि सीता रामचन्द्रजीको लौटा दीजिये, इसमें आपका बहुतही भला होगा

बुध पुराण श्रुति सम्मत बानी ⊛ कही बिभीषण नीति बखानी ॥१॥
सुनत दशानन उठा रिसाई ⊛ खल तोहिं मृत्यु निकट चलि आई ॥२॥

यद्यपि बिभीषणने वेद पुराणके अनुकूल चतुर पंडितोंके समान नीति आदिक वर्णन की ॥१॥ परन्तु इन बातोंको सुन कर रावण क्रोधित हो उठा और कहने लगा कि हे मूर्ख! ज्ञात होता है कि तेरी मौत अब समीप आगई है ॥ २ ॥

जियसि सदा शठ मोर जियावा ⊛ रिपुकर पक्ष सदा तोहिं भावा ॥३॥
कहसि न खल असको जग माहीं ⊛ भुज बल जेहि जीते हम नाहीं ॥४॥

रे मूर्ख! सदा ही तुझे जिलाता रहा और तुझे वैरीका पक्ष अच्छा मालूम होता है ॥३॥ रे दुष्ट! यह बात क्यों नहीं कहता कि संसारमें ऐसा कौन बली है जिसको मैंने अपनी भुजाओंके बलसे नहीं जीत लिया है ॥४॥

मम पुर बसि तपसिन सन प्रीती ⊛ शठ मिलु जाइ तिनहिं कहु नीती ॥५॥
अस कहि कीन्हेसि चरण प्रहारा ⊛ अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥६॥

रे मूर्ख! तू मेरे नगर में रह कर वन तपस्वियोंसे प्रीति रखता है। अच्छा अब उन्हींसे जाकर मिल और उन्हींको यह नीति सिखाना ॥ ५ ॥ ऐसा कह कर रावणने बिभीषणके लात मारी परन्तु इतने पर भी बुद्धिमान बिभीषण उसके चरण ही पकड़े ॥ ६ ॥

उमा सन्त की यहै बड़ाई ⊛ मन्द करत जो करै भलाई ॥७॥
तुम पितु सरिस भले मोहिं मारा ⊛ राम भजे हित होइ तुम्हारा ॥८॥

शंकरजी कहते हैं कि हे पार्वती! संत मनुष्यों की यही बड़ाई है कि जो मनुष्य उनके साथ बुराई भी करे तो वे उसके साथ भलाई ही करते हैं ॥ ७ ॥ बिभीषण ने कहा हे तात! आप हमारे पिता के समान हैं, आपने मुझे मारा तो अच्छा ही

किया परन्तु रामचन्द्रजीके भजनसे ही आपका भला होगा अन्यथा नहीं ॥ ८ ॥

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ ॐ सबहिं सुनाय कहत अस भयऊ ॥९॥

ऐसा कह कर विभीषण अपने मंत्री को साथ लेकर आकाश मार्ग द्वारा चला गया और जाते समय इस प्रकार कह गया ॥ ९ ॥

दोहा—राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा कालवश तोरि ।
मैं रघुनायक शरण अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥४२॥

कि श्रीरामचन्द्रजी सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले हैं और तुम्हारी सभा काल के वश में है सो अबमैं रामचन्द्रजीकी शरणमें जाता हूँ, अब मुझे कोई दोष न देना ॥४२॥

अस कहि चला विभीषण जबहीं ॐ आयुहीन भे निशिचर तबहीं ॥१॥
साधु अवज्ञा तुरत भवानी ॐ कर कल्याण अखिल कर हानी ॥२॥

ऐसा वचन कह कर जिस समय विभीषण वहाँसे चला उसी समय सारे निशाचर आयुसे हीन हो गये (उनकी मृत्यु का समय निकट आ गया) ॥ १ ॥ श्री महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! साधु पुरुषों का अनादर करना सब कल्याणों का नाश करनेवाला है ॥ २ ॥

रावण जबहिं विभीषण त्यागा ॐ भयो विभव बिनु तबहिं अभागा ॥३॥
चलेउ हर्षि रघुनायक पाहीं ॐ करत मनोरथ बहु मनमाहीं ॥४॥

जिस समय रावणने विभीषण को इस प्रकार त्याग दिया उसी समय वह तेजहीन हो गया ॥ ३ ॥ विभीषण प्रसन्न होकर और नाना प्रकार के मनोरथ अपने हृदय में करता हुआ श्रीरामचन्द्रजीके पास चल दिया ॥ ४ ॥

देखिहौं जाइ चरण जलजाता ॐ अरुण मृदुल सेवक सुखदाता ॥५॥
जे पद परसि तरी ऋषि नारी ॐ दण्डक पावन कानन चारी ॥६॥

विभीषण अपने हृदय में विचार करता है कि मैं आज उन कमलरूपी चरणों को देखूँगा जो लाल कमल के समान कोमल हैं और भक्तोंको सुख देनवाले हैं ॥५॥ जिन चरणों का स्पर्श करनेसे गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या तर गई और जिन चरणों से दंडक वन के रहने वाले पवित्र हो गये ॥ ६ ॥

जे पद जनक सुता उर लाये ॐ कपट कुरंग संग धरि धाये ॥७॥
हर उर सर सरोज पद जोई ॐ अहो भाग्य मैं देखब सोई ॥८॥

और जिन चरणोंका ध्यान श्रीजानकीजी किया करती हैं और जो चरण कपटरूपी मृगके साथ दौड़े थे ॥७॥ और जो चरण श्रीमहादेवजीके हृदयरूपी तालाबके कमलरूप हैं अहा ! मेरे बड़े भाग्य हैं क्योंकि आज मैं जाकर उन्हीं चरणों को देखूँगा ॥८॥

दोहा—जिन पायँन कर पादुका, भरत रहे मन लाय।
ते पद आजु विलोकिहौं, इन नयनन अब जाय ॥४३॥

और जिन कमलरूपी चरणों की खड़ाऊँ की सेवा भरतजी मन लगा कर किया करते हैं अथवा मन लगाये रहते हैं आज मैं इन्हीं नेत्रोंसे उन चरणों को देखूँगा॥४३॥

यहि विधि करत सप्रेम विचारा ॐ आयउ सपदि सिन्धु के पारा ॥१॥
कपिन विभीषण आवत देखा ॐ जानेउ कोउ रिपु दूत विशेषा ॥ २ ॥

इस प्रकारसे विभीषण प्रेम के साथ विचार करता हुआ शीघ्रता से समुद्र के पार आ गया ॥ १ ॥ बन्दरों ने विभीषण को आते देख कर यह जाना कि कोई बैरी का विशेष दूत आ रहा है ॥ २ ॥

ताहि राखि कपिपति पहँ आये ॐ समाचार सब जाइ सुनाये ॥ ३ ॥
कह सुग्रीव सुनिय रघुराई ॐ आवा मिलन दशानन भाई ॥ ४ ॥

बानर लोग उसे वहीं ठहरा कर सुग्रीव के पास गये और उसका सब समाचार कह सुनाया ॥ ३ ॥ तब सुग्रीव रामचन्द्रजीके पास जाकर कहने लगे कि हे नाथ ! रावण का भाई आपसे मिलने आया है ॥ ४ ॥

कह प्रभु सखा बूझिये काहा ॐ कहै कपीश सुनहु नरनाहा ॥ ५ ॥
जानि न जाय निशाचर माया ॐ कामरूप केहि कारण आया ॥६॥

श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव से कहने लगे कि हे मित्र ! इस विषय में तुम्हारी क्या सलाह है ? तब सुग्रीव कहने लगे कि हे नाथ ! सुनिये ॥ ५ ॥ निशाचरों की माया कुछ समझ में नहीं आती, न जाने यह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला राक्षस यहाँ किस कारण से आया है ॥ ६ ॥

भेद हमार लेन शठ आवा ॐ राखिय बाँधि मोहिं अस भावा ॥७॥
सखा नीति तुम नीकि विचारी ॐ मम प्रण शरणागत भयहारी ॥८॥

मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है इस कारण इसे बाँध रखना चाहिये ॥ ७ ॥ यह सुन श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि हे मित्र ! तुमने यह नीति तो ठीक ही विचारी है परन्तु मेरा तो प्रण यह है कि मैं शरणागतों का दुख दूर करता हूँ ॥ ८ ॥

सुनि प्रभु बचन हर्ष हनुमाना ॐ शरणागत वत्सल भगवाना ॥९॥

ऐसे श्रीरामचन्द्रजी के वचन सुन हनुमान्‌जी बहुत प्रसन्न हुये और यह कहने लगे कि भगवान बड़े ही दयालु और शरणागत की रक्षा करनेवाले हैं ॥ ९ ॥

दोहा—शरणागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।

ते नर पामर पापमय, तिनहिं विलोकत हानि ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य अपने अहित को विचार करके शरण आये हुए मनुष्य को त्याग देते हैं वे मनुष्य बड़े ही नीच और पापों से भरे हुये हैं, उनके देखने से भी पाप लगने की संभावना है ॥ ४४ ॥

कोटि विप्र बध लागहिं जाही ❀ आये शरण तजौं नहिं ताही ॥१॥
सन्मुख होइ जीव मोहिं जबहीं ❀ जन्म कोटि अघ नाशौं तबहीं ॥२॥

श्रीरामजी कहते हैं कि हे मित्र सुग्रीव ! यदि किसी मनुष्य को करोड़ों ब्रह्म-हत्याओं का पाप लगा हो, यदि ऐसा मनुष्य भी मेरी शरण में आवे तो मैं उसे त्याग नहीं सकता ॥ १ ॥ क्योंकि ऐसे पापात्मा जीव जिस समय मेरे सन्मुख आते हैं उसी समय मैं उनके करोड़ों जन्म के पातक दूर कर देता हूँ ॥ २ ॥

पापवन्त कर सहज स्वभाऊ ❀ भजन मोर तेहि भाव न काऊ ॥३॥
जो पै दुष्ट हृदय सो होई ❀ मोरे सन्मुख आव कि सोई ॥४॥

पापी मनुष्यों का सहज ही यह स्वभाव होता है कि उनको मेरा भजन अच्छा नहीं लगता ॥ ३ ॥ और हे मित्र ! जो मनुष्य दुष्टहृदय होते हैं क्या वे मेरे सन्मुख आ सकते हैं ? कदापि नहीं, अतएव यदि विभीषण भी दुरात्मा होता तो वह मेरे सन्मुख कदापि न आता ॥ ४ ॥

निर्मल मन जन सो मोहिं पावा ❀ मोहिं कपट छल छिद्र न भावा ॥५॥
भेद लेन पठवा दशशीशा ❀ तबहुँ न कछु भय हानि कपीशा ॥६॥

जो मनुष्य शुद्ध और सच्चे हृदय के हैं वही मुझे प्रिय हैं। मुझे कपटी और द्वेषी मनुष्य अच्छे नहीं लगते ॥ ५ ॥ हे सुग्रीव ! यदि रावण ने उसे भेद लेने को भी भेजा है तब भी कुछ भय और हानि की बात नहीं है ॥ ६ ॥

जग महँ सखा निशाचर जेते ❀ लक्ष्मण हनहिं निमिष महँ तेते ॥७॥
जो सभीत आवा शरणाई ❀ रखिहौं ताहि प्राण की नाई ॥८॥

क्योंकि संसार में जितने राक्षस हैं लक्ष्मणजी उन्हें पल भर में मार सकते हैं ॥ ७ ॥ और यदि वह डर के कारण मेरी शरण में आया है तो मैं उसे अपने प्राणों के समान प्यारा समझूँगा ॥ ८ ॥

दोहा—उभय भाँति लै आवहु, हँसि कह कृपा निधान।
जय कृपालु कहि कपि चले, अंगदादि हनुमान ॥ ४५ ॥

सो चाहे वह भेद लेने आया हो अथवा शरण में आया हो दोनों ही प्रकार से उसे ले आओ, ऐसा वचन हँस कर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा। तब अंगद और हनुमान्

आदि बानर प्रसन्न होकर ऐसा कहते हुए चले कि कृपालु श्रीरामचन्द्रजी की जय हो ॥

दूत बदी भुवा विभीषण, लाये करि सन्मान ।
कीन्ह दंडवत चारि कति, प्रभु छवि देखि जुड़ान ॥ ४६ ॥

दूत बदी पुष्टवंशी को वानरगण सन्मान के सहित विभीषण को श्रीरामचन्द्रजी के पास ले आये, उसने भगवानको देखतेही कहा कि मैं आपकी शरण हूँ और प्रणाम किया और भगवान को देख कर उसका हृदय शीतल हो गया ॥ ४६ ॥

सादर तेहि आगे करि बानर ॥ चले जहाँ रघुपति करुणाकर ॥१॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता ॥ नयनानन्द दान के दाता ॥२॥

सब बन्दर उसे आदर के साथ आगे करके उस स्थान को चले जहाँ दयासागर श्रीरामचन्द्रजी विराजमान थे ॥१॥ उसने दूरही से नेत्रोंको आनन्दरूपी दान देनेवाले दोनों भाइयों को देखा ॥ २ ॥

बहुरि राम छविधाम विलोकी ॥ रहेउ ठिठुकि एकटक पल रोकी ॥३॥
भुज प्रलंब कंजारुण लोचन ॥ श्यामलगात प्रणत भयमोचन ॥४॥

फिर शोभाधाम श्रीरामचन्द्रजीको देख कर खड़ा हो गया और टकटकी लगा कर उनकी शोभा देखने लगा ॥३॥ कैसे हैं रामचन्द्र जिनकी लम्बी भुजायें हैं, लाल कमलके समान जिनके नेत्र हैं श्यामल जिनका शरीर है और शरणागतके सब दुःखों को दूर करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

सिंह कंध आयत उर सोहा ॥ आनन अमित मदन छवि मोहा ॥५॥
नयन नीर पुलकित अति गाता ॥ उर धरि धीर कहत मृदु बाता ॥६॥

सिंहके समान जिनके ऊँचे कांधे हैं और विशाल हृदय है मुख की अपार शोभा हजारों कामदेवोंको मोहित करनेवाली है ॥५॥ ऐसी मूर्ति को देख विभीषण गद्गद और रोमांचित हो हृदयमें धीरज धर इस प्रकार मृदु वचन कहने लगा ॥६॥

निशिचर वंश जनम सुर त्राता ॥ नाथ दशानन कर मैं भ्राता ॥७॥
सहज पाप प्रिय तामस देहा ॥ यथा उलूकहिं तम पर नेहा ॥८॥

हे देवताओंकी रक्षा करनेवाले कृपालु श्रीरामचन्द्रजी ! मेरा जन्म निशाचर वंश में हुआ है और मैं रावण का भाई हूँ ॥७॥ मेरे इस राक्षसी शरीरको स्वभाव ही से पाप प्यारा है जिस प्रकार उल्लूको अंधकार ही प्रिय होता है ॥ ८ ॥

दोहा—श्रवण सुयश सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर ।
त्राहि त्राहि आरत हरण, शरण सुखद रघुवीर ॥४७॥

हे संसारके दुःख दूर करनेवाले श्रीरघुनाथजी ! मैं कानोंसे आपका सुयश सुन

कर आया हूँ कि आप शरणागतके रक्षा करनेवाले और सुख देनेवाले हैं अतएव हे दुखोंके दूर करनेवाले कृपालु आप मेरी रक्षा कीजिये ! रक्षा कीजिये ! ॥ १७ ॥

अस कहि करत दंडवत देखा ❀ तुरत उठे प्रभु हर्ष विशेखा ॥१॥
दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा ❀ भुज विशाल गहि हृदय लगावा ॥२॥

ऐसा कह कर विभीषणको दंडवत करते हुए देख श्रीरामचन्द्रजी तुरन्त उठे और उनके हृदय में कुछ विशेष हर्ष प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ विभीषण के दीन वचन प्रभु के मन को बड़े अच्छे लगे इस कारण उन्होंने विभीषणको अपनी विशाल भुजाओं से हृदय में लगा लिया ॥ २ ॥

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी ❀ बोले वचन भक्त-भय-हारी ॥३॥
कहु लंकेश सहित परिवारा ❀ कुशल कुठाहर वास तुम्हारा ॥४॥

अपने भाई लक्ष्मणके सहित मिलकर विभीषणको पास बैठा कर भक्तोंके भय को दूर करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार वचन बोले ॥३॥ हे लंकाके राजा ! कहो तुम अपने परिवार सहित कुशल से तो हो क्योंकि तुम्हारा वासस्थान बुरा है ॥ ४ ॥

खल मंडली बसहु दिन राती ❀ सखा धर्म निबहै केहि भाँती ॥५॥
मैं जानौं तुम्हरी सब रीती ❀ अति नय निपुण न भाव अनीती ॥६॥

हे तात ! तुम रात दिन दुष्टोंके साथ निवास करते हो तुम्हारे धर्मका निवाह किस प्रकार होता है ॥५॥ मैं तुम्हारी सब रीति जानता हूँ तुम नीतिमें बड़े चतुर हो तुम्हारा भाव अन्याय का नहीं है ॥ ६ ॥

बरु भल वास नरक कर ताता ❀ दुष्ट संग जनि देइ विधाता ॥७॥
अब पद देखि कुशल रघुराया ❀ जो तुम कीन्ह जानि जन दाया ॥८॥

हे मित्र ! नरकका रहना अच्छा है परन्तु विधाता कभी दुष्ट मनुष्य का साथ न देवे इसीमें कुशल है ॥७॥ ऐसे वचन सुन विभीषण कहने लगे कि हे नाथ ! अब आपके इन चरणारविंदके देखनेहीसे सब कुशल है जो आपने दास जानकर दया की॥८॥

दोहा—तब लगि कुशल न जीव कहँ, सपनेहु मन विश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहँ, शोक धाम तजि काम ॥४८॥

हे नाथ ! उस समय तक जीव को कुछ भी कुशलता प्राप्त नहीं होती और स्वप्न में भी आराम नहीं मिलता जब तक वह शोक रूप विषय वासनाओं को छोड़ कर आपका भजन नहीं करता ॥ ४८ ॥

तब लगि बसत हृदय खल नाना ❀ लोभ मोह मत्सर मद माना ॥१॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा ❀ धरे चाप शायक कटि भाथा ॥२॥

और उस समय तक नाना प्रकार खल, के लोभ, मोह, अभिमान, अपमान आदि हृदय में निवास करते हैं ॥ १ ॥ जब तक आप धनुष बाण और कटि में तर्कस धारण किये हुये हृदय में वास नहीं करते ॥ २ ॥

ममता तिमिर तरुण अँधियारी ॥ राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥३॥
तब लगि बसत जीव उरमाहीं ॥ जब लगि प्रभु प्रतापरवि नाहीं ॥४॥

और यह ममतारूपी अन्धकार और जवानीरूप रात्रि रागद्वेषरूपी उल्लुओं को सुख देनेवाली ॥३॥ उसी समय तक हृदयमें वास करता है जबतक आपका प्रतापरूपी सूर्य हृदयमें उदय नहीं होता अर्थात् आपके प्रतापसे ये सब नष्ट हो जाते हैं ॥४॥

अब भइ कुशल मिटे भय भारे ॥ देखि रामपद कमल तुम्हारे ॥५॥
तुम कृपालु जा पर अनुकूला ॥ ताहि न व्याप त्रिविध भव शूला॥६॥

हे नाथ ! अब आपके कमल स्वरूपी चरणों के देखने से सब प्रकार कुशल है और सब भय दूर होगये ॥ ५ ॥ और जिसके ऊपर दया करते हैं उसे यह सांसारिक तीनों प्रकार के शूल अर्थात् दैहिक भौतिक पाप नहीं सताते ॥ ६ ॥

मैं निशिचर अति अधम स्वभाऊ ॥ शुभ आचरण कीन्ह नहिं काऊ ॥७॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा ॥ सो प्रभु हर्षि हृदय मोहिं लावा ॥८॥

मैं निशाचर हूँ और मेरा स्वभाव बड़ाही नीच है मैंने कोई शुभ कर्म भी कभी नहीं किया ॥ ७ ॥ परन्तु जिस प्रभु का रूप मुनि लोगों के ध्यान में भी नहीं आता उसी प्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक मुझे हृदय से लगा लिया ॥ ८ ॥

दोहा—अहो भाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुख पुंज ।
देखेउँ नयन विरंचि शिव सेव्य युगल पद कंज ॥ ४९ ॥

सुख को राशि श्रीरघुनाथजी की कृपासे आज मेरा भाग्य बड़ाही अपार है क्योंकि आज मैंने उन चरणों को देखा जिनको सेवा ब्रह्मा और महादेवजी किया करते हैं

सुनहु सखा निज कहहुँ स्वभाऊ ॥ जान भुशुंडि शंभु गिरिजाऊ ॥१॥
जो नर होय चराचर द्रोही ॥ आवै सभय शरण तकि मोहीं ॥ २॥

रामचन्द्रजी कहते हैं कि हे मित्र विभीषण ! सुनो, अपना स्वभाव तुम्हें बताता हूँ जिसे काकभुशुण्ड और महादेव पार्वतीजी अच्छी तरह जानते हैं ॥ १॥ कि जो मनुष्य सारे संसारके प्राणीमात्र का वैरी हो और वह उनसे डर कर मेरी शरणमें आवे ॥

तजि मद मोह कपट छल नाना ॥ करौं सद्य तेहि साधु समाना ॥३॥
जननी जनक बंधु सुत दारा ॥ तन धन भवन सुहृद परिवारा ॥४॥

तो मैं उसके मद मोह, कपट और छलको दूर कर हे मित्र ! उसे साधु के समान

शुद्ध कर देता हूँ ॥ ३ ॥ और जो मनुष्य, माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन घर और अच्छे मित्र व परिवार आदि ॥ ४ ॥

सबके ममता ताग बटोरी ॐ मम पद मनहिं बाँधि वर डोरी ॥५॥
समदर्शी इच्छा कछु नाहीं ॐ हर्ष शोक भय नहिं मनमाहीं ॥६॥

इन सबके ममता (प्रेम) रूपी सूते को बट कर रस्सी बनावे और उससे मेरे चरणों में मन को बाँध दे अर्थात् सबसे प्रेम तोड़ मेरा ध्यान करें ॥ ५ ॥ और जो समदर्शी हैं, जिन्हें किसी प्रकार की इच्छा नहीं है, जिनके हृदय में हर्ष शोक भय कुछ भी नहीं है ॥ ६ ॥

अस सज्जन मम उर बस कैसे ॐ लोभी हृदय बसत धन जैसे ॥७॥
तुम सारिखे संत प्रिय मोरे ॐ धरौं देह नहिं आन निहोरे ॥८॥

ऐसे सज्जन मेरे हृदय में किस प्रकार बास करते हैं जैसे लोभी पुरुष के हृदय में धन वास करता है ॥ ७ ॥ और हे मित्र! तुम्हारे ऐसे संत मुझे सदैव प्यारे लगते हैं, मैं और किसी के लिये देह धारण नहीं करता हूँ अर्थात् इन्हीं सन्तों के लिये अवतार लेता हूँ ॥ ८ ॥

दोहा—सगुण उपासक परसहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्राण समान मोहिं, जिनके द्विज पद प्रेम ॥ ५० ॥

और जो मनुष्य प्रेम के साथ सगुण रूप की उपासना करनेवाले हैं। नीति में चतुर और नियम में दृढ़ हैं और जिनका ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है वे मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं ॥ ५० ॥

सुनु लंकेश सकल गुण तोरे ॐ ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे ॥१॥
राम वचन सुनि वानर यूथा ॐ सकल कहहिं जय कृपा वरूथा ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे विभीषण! तुम्हारे अन्दर उपरोक्त सबगुण विद्यमान हैं इससे तुम मुझे बहुत प्यारे लगते हो ॥ १ ॥ ऐसे रामचन्द्रजी के वचन सुनकर सब वानरगण कहने लगे कि हे कृपानिधान! भगवान आपकी जय हो ॥ २ ॥

सुनत विभीषण प्रभु की वाणी ॐ नहिं अघात श्रवणामृत जानी ॥३॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा ॐ हृदय समात न प्रेम अपारा ॥४॥

विभीषण ऐसी रामचन्द्रजी की वाणी जो कानों को अमृत के समान है, सुनकर तृप्त नहीं हुये ॥ ३ ॥ और बार बार रामचन्द्रजी के चरणकमलों को छूते हैं परन्तु उनका भारी प्रेम हृदय में नहीं समाता है ॥ ४ ॥

सुनहु देव सचराचर स्वामी ॐ प्रणतपाल उर अंतर्यामी ॥५॥

उर कछु प्रथम वासना रही ॐ प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ॥६॥

विभीषण कहते हैं कि हे चर अचर के स्वामी ! प्रण के पालन करनेवाले, हृदय की बात जाननेवाले भगवान ! सुनिये ॥ ५ ॥ पहले कुछ मेरे हृदय में इच्छा थी सो आपके चरणों की प्रीतिरूपी नदी में बह गई ॥ ६ ॥

अब कृपालु निज भक्ति जो पावनि ॐ देहु दया करि शिव मन भावनि ॥७॥
एवमस्तु कहि प्रभु रणधीरा ॐ माँगा तुरत सिंधु कर नीरा ॥८॥

अब हे कृपालु रामचन्द्रजी ! अपनी वह पवित्र भक्ति जो शिवजी के मन को अच्छी लगती है सो कृपा करके दीजिये ॥ ७ ॥ रणधीर श्रीरामचन्द्रजी ने एवमस्तु कह कर समुद्र का पानी मँगवाया ॥ ८ ॥

यदपि सखा तॉहि इच्छा नाहीं ॐ मम दर्शन अमोघ जगमाहीं ॥९॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा ॐ सुमन वृष्टि नभ भई अपारा ॥१०॥

और कहा कि हे मित्र ! यद्यपि तुम्हें इसकी इच्छा नहीं है परन्तु मेरा दर्शन संसार में निष्फल नहीं होता ॥९॥ ऐसा कह रामचन्द्रजी ने विभीषण को राजतिलक कर दिया, तब आकाश से देवता लोग फूल बरसाने लगे ॥ १० ॥

दोहा—रावण क्रोध जु अनल सम, स्वाँस समीर प्रचण्ड।
जरत विभीषण राखेऊ, दीन्हेउ राज्य अखंड ॥ ५१ ॥

रावण का क्रोध अग्नि के समान था, स्वाँस प्रचंड वायुरूप थी उस अग्नि से जलते हुए विभीषण को बचा कर श्रीरामचन्द्रजी ने उसे अटल राज्य दे दिया ॥ ५१॥

दोहा—जो सम्पति शिव रावणहिं, दीन्ह दिये दश माथ।
सो संपदा विभीषणहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥ ५२ ॥

जो सम्पदा महादेवजी ने रावण को दशो शिरों का बलिदान करने पर दी थी वही सम्पदा श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण को थोड़ीसी भक्ति के लिये सकुच के साथ दी अर्थात् इस भक्ति के बदले यह सम्पत्ति थोड़ी है ॥ ५२ ॥

अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना ॐ ते नर पशु बिनु पूँछ विषाना ॥१॥
निज जन जानि ताहि अपनावा ॐ प्रभु स्वभाव कपि कुल मनभावा ॥२॥

ऐसे दयालु प्रभु को छोड़ कर जो मनुष्य दूसरों का भजन करते हैं वे बिना सींग पूँछ के पशु हैं, अर्थात् उनमें और पशुओं में कोई अन्तर नहीं ॥ १ ॥ विभीषण को अपना भक्त जान कर रामचन्द्रजीने अपना लिया सो प्रभु का यह स्वभाव वानरकुल को बहुत ही प्यारा मालूम हुआ ॥२॥

पुनि सर्वज्ञ सर्व उरवासी ॐ सर्व रूप सब रहित उदासी ॥३॥

प्रात पंचमी दिवस खरारी * सचिवन लियो बुलाय पुकारी ॥४॥
बोले बचन नीति प्रति पालक * कारण मनुज दनुज कुल घालक ॥५॥

फिर सब जाननेवाले, सबके हृदय में वास करनेवाले, सर्वरूप, सबसे रहित, उदासीन ऐसे रामचन्द्रजी ने ॥ ३ ॥ सवेरे पञ्चमी के दिन अपने मन्त्रियों को बुला लिया ॥ ४ ॥ और नीति का पालन करनेवाले राक्षस कुल के नाश करने के लिये मनुष्य रूप धारण करनेवाले रामचन्द्रजी बोले ॥ ५ ॥

सुनु कपीश लंकापति बीरा * केहिविधि उतरिय जलधिगँभीरा ॥६॥
संकुल उरग मकर झष जाती * अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥७॥

कि हे सुग्रीव ! हे विभीषण ! हे वीर वानर योधाओं ! सुनो, यह अथाह समुद्र किस प्रकार से उतरा जाय ॥ ६ ॥ क्योंकि यह सर्प, मगर और नाना प्रकार की मछलियों से भरा है और सब प्रकारसे बहुतही गहरा और दुस्तर मालूम होता है ॥७॥

कह लंकेश सुनहु रघुनायक * कोटि सिंधु शोषक तव शायक ॥८॥
यद्यपि तदपि नीति अस गाई * बिनय करिय सागर पहँ जाई ॥९॥

तब विभीषण कहने लगे कि हे रामचन्द्रजी ! यद्यपि करोड़ों समुद्रों को सुखाने वाले तो आपके बाणही हैं ॥ ८ ॥ तो भी नीति-शास्त्र में ऐसा कहा है कि पहले नम्रता से काम लेवे, इस कारण समुद्रके पास चल कर बिनय करना उचित है ॥९॥

दोहा—प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहिहि उपाय बिचारि ।
बिनु प्रयास सागर तरहिं, सकल भालु कपि झारि ॥ ५३ ॥

हे नाथ ! समुद्र आपका कुलगुरु है क्योंकि वह आपके ही सूर्यवंश के राजा सगरके पुत्रों का खोदा है, अतएव सगरवंश में होनेके कारण आपका वंशज और गुरु है सो वह कुछ न कुछ उपाय बतावेहीगा जिससे बिना परिश्रमके ही सब रीछ, बानरों की सेना समुद्र पार उतर जायगी ॥ ५३ ॥

सखा कहेउ तुम नीक उपाई * करिय दैव जो होइ सहाई ॥१॥
मंत्र न यह लछिमन मन भावा * रामबचन सुनि अति दुख पावा ॥२॥

यह सुन रामचन्द्रजी ने कहा हे मित्र ! तुमने उपाय तो अच्छा बताया, यदि ईश्वर सहायता करे तो सफल होगा ॥ १ ॥ परन्तु यह सलाह लक्ष्मणजी को अच्छी नहीं लगी, वह रामचन्द्रजी के वचन सुन कर बड़े दुःखी हुए ॥ २ ॥

नाथ दैव कर कवन भरोसा * शोषिय सिंधु करिय मन रोसा ॥३॥
कादर मन कर एक अधारा * दैव दैव आलसी पुकारा ॥४॥

और कहने लगे कि हे नाथ ! ईश्वर का कौन भरोसा ! मनमें क्रोध कर समुद्र

को सुखा दीजिये ॥ ३ ॥ कायर पुरुषों के लिये ईश्वर एक सहारा मात्र है क्योंकि जो कामसी पुरुष हैं वे ईश्वर ईश्वर पुकारा करते हैं कि भाग्यमें होगा तो काम पूर्ण हो जायगा अन्यथा नहीं, परन्तु अपनी शक्ति से काम नहीं लेते ॥ ४ ॥

सुनत विहँस बोले रघुबीरा ॥ ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ॥५॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई ॥ सिंधु समीप गये रघुराई ॥६॥

लक्ष्मणजी का यह वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी हँस कर कहने लगे कि हे भाई! ऐसाही करूँगा, मनमें धीरज रक्खो ॥ ५ ॥ ऐसा कह कर लक्ष्मणजीको समझा कर श्रीरामचन्द्रजी समुद्रके पास गये ॥ ६ ॥

प्रथम प्रणाम कीन्ह रघुराई ॥ बैठे पुनि तट दर्भ डसाई ॥ ७ ॥
जबहिं विभीषण प्रभु पहँ आये ॥ पाछे रावण दूत पठाये ॥ ८ ॥

पहले तो प्रभुने आकर समुद्रको प्रणाम किया फिर किनारे पर कुश बिछा कर बैठ गये ॥ ७ ॥ जब विभीषण श्रीरामचन्द्रजीके पास चले आये उसी समय पीछे रावणने दूत भेजे ॥ ८ ॥

दोहा—सकल चरित तिन देखेऊ, धरे कपट कपि देह।
प्रभु गुण हृदय सराहि अति, शरणागत पर नेह ॥५४॥

उन दूतों ने आकर और बनावटी बन्दर का देह धारण कर सब हाल देखा और शरणागत पर ऐसा स्नेह देख कर श्रीरामचन्द्रजी के गुणों की बड़ाई मनही मन करने लगे ॥ ५४ ॥

प्रगट बखानत राम सुभाऊ ॥ अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ ॥१॥
रिपु के दूत कपिन जब जाने ॥ तिन्हें बाँध कपिपति पहँ आने ॥२॥

फिर रामचन्द्रजी का गुणानुवाद स्पष्ट रूप से कहने लगे, मारे प्रेम के अपने को छिपाना भूल गये ॥ १ ॥ तब तो बन्दरों ने उन्हें पहचान लिया कि यह तो बैरी के दूत हैं और उन्हें बाँध कर सुग्रीव के पास ले आये ॥ २ ॥

कह सुग्रीव सुनहु सब बनचर ॥ अंग भंग करि पठवहु निशिचर ॥३॥
सुनि सुग्रीव वचन कपि धाये ॥ बाँध कटक चहुँ ओर फिराये ॥४॥

तब सुग्रीव कहने लगे कि हे सब बन्दरो! इन निशाचरों को किसी न किसी अंग से हीन करके भेजो ॥ ३ ॥ सुग्रीव के ऐसे वचन सुन बन्दर लोग दौड़ पड़े और उन्हें बाँध कर सेना के चारो ओर घुमाया ॥ ४ ॥

बहु प्रकार मारन कपि लागे ॥ दीन पुकारत तदपि न त्यागे ॥५॥
जो हमार हर नासा काना ॥ तेहि कोशलाधीश कर आना ॥६॥

और उन निशाचरों को वन्दर लोग बहुत प्रकार से मारने लगे यद्यपि वे दीनवाणी कह कर चिल्लाते थे परन्तु वानर तब भी उन्हें नहीं छोड़ते ॥ ५ ॥ अन्त में वे घबड़ा कर कहने लगे कि जो हमारे नाक कान काटे उसे श्रीरघुनाथजी की कसम है ॥ ६ ॥

सुनि लक्ष्मण तिन निकट बुलाई ❀ दया लागि हँसि दीन्ह छुड़ाई ॥७॥
रावण कर दीन्हेउ यह पाती ❀ लछिमन बचन बांचु कुलघाती ॥८॥

लक्ष्मणजीने यह सुन उन दूतोंको पास बुलाया, उनकी दशा देख लक्ष्मणजी को दया आगई इस कारण उन्होंने हँस कर उन्हें छुड़ा दिया ॥ ७ ॥ और कहा कि यह चिट्ठी रावणके हाथमें देना और उस कुलनाशकसे कहना कि यह लक्ष्मणके हित वचन हैं. इन्हें बाँचो ॥ ८ ॥

दोहा—कहेउ मुखागर मूढ़ सन, मम संदेश उदार।
सीता देइ मिलहु न तु, आवा काल तुम्हार ॥ ५५॥

और उस मूर्ख रावणसे मेरा यह हितकारी संदेशा जबानीभी कह देना कि सीता को देकर जा मिलो. नहीं तो अब तुम्हारी मौत निकट आगई है ॥ ५५॥

तुरत नाय लछिमन पद माथा ❀ चले दूत वर्णत गुण गाथा ॥१॥
कहत राम यश लंका आये ❀ रावण चरण शीश तिन नाये ॥२॥

दूत उसी समय लक्ष्मणजीके चरणोंको शीश नवा कर रामचन्द्रजीके गुणानुवाद वर्णन करते हुए चल दिये ॥१॥ और रामचन्द्रजी का यश रास्ते में बखान करते हुए लंकामें आये और रावणके चरणोंको प्रणाम किया ॥ २ ॥

विहँसि दशानन पूछी बाता ❀ कहसि न शुक आपनि कुशलाता ॥३॥
पुनि कहु कुशल विभीषण केरी ❀ जासु मृत्यु आई अति नेरी ॥४॥

तब हँस कर रावण पूँछने लगा कि हे शुक ! तू अपनी कुशल क्यों नहीं बतलाता ॥३॥ और विभीषणका हाल कहो जिसकी मौत अब अति निकट आ गई है।

करत राज लंका शठ त्यागा ❀ होइहि जव कर कीट अभागा ॥५॥
पुनि कहु भालु कीश कटकाई ❀ कठिन काल प्रेरित चलि आई ॥६॥

उस मूर्खने राज्य करते हुए लंकाको छोड़ दिया अब वह अभागा जौ का घुन होकर रीछ और बन्दरोंके साथ मारा जायगा ॥ ५ ॥ फिर उस बन्दर और रीछों की सेनाका हाल कहो जो कठिन कालके भेजनेसे यहाँ मरनेके लिये आई है ॥६॥

जिनके जीवन कर रखवारा ❀ भयो मृदुलचित सिंधु बिचारा ॥७॥
कहु तपसिन कर बात बहोरी ❀ जिनके हृदय त्रास अति मोरी ॥८॥

और जिनके प्राणोंका बचानेवाला केवल दयालु समुद्र है, यदि वह अन्तर्गत न

होता तो अब तक राक्षसगण उन्हें भक्षण कर चुके होते ॥ ७ ॥ फिर उन दोनों तपसियोंका हाल कहो जिनके हृदयमें मेरा बड़ा भारी डर लगा रहता है ॥ ८ ॥

दोहा—भई भेंट की फिरि गये, श्रवण सुयश सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल, कस चकित चित तोर ॥५६॥

अरे उनसे भेंट हुई अथवा वे मेरा यश सुन कर लौट गये, तू तो वैरी की सेना का कुछ बल, तेज, प्रताप भी वर्णन नहीं करता। इस प्रकार तेरा चित्त चकितसा क्यों होरहा है ॥ ५६ ॥

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसे ॐ मानहु कहा क्रोध तजि तैसे ॥१॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा ॐ जातहिं राम तिलक तेहि सारा ॥२॥

तब शुक दूत कहने लगा कि हे नाथ! जिस तरह आप कृपा करके मुझसे पूछते हैं वैसेही आप क्रोध दूर करके मेरे इन वचनोंको मानें॥१॥जिस समय आपका छोटा भाई विभीषण जाकर मिला उसी समय रामचन्द्रजीने उसे राजतिलक कर दिया ॥२॥

रावण दूत हमहिं सुनि काना ॐ कपिन बाँधि दीन्हें दुख नाना ॥३॥
श्रवण नासिका काटन लागे ॐ राम शपथ दीन्हीं तब त्यागे ॥४॥

और बन्दरोंने मुझे रावण का दूत समझ कर बांध दिया और नाना प्रकार के कष्ट दिये ॥३॥ जब मेरी नाक और कान काटने लगे तब मैंने उन्हें रामचन्द्रजी की कसम दी तब मुझे छोड़ा ॥ ४ ॥

पूँछहु नाथ कीश कटकाई ॐ बदन कोटि शत वरणि न जाई ॥५॥
नाना वरण भालु कपि धारी ॐ विकटानन विशाल भयकारी ॥६॥

और हे नाथ! जो आप बन्दरोंकी सेनाका समाचार पूछते हैं सो वह सौ करोड़ मुखोंसे भी वर्णन नहीं की जासकती ॥ ५ ॥ बन्दर और रीछ नाना प्रकारके रूपवाले हैं जिनके बड़े विकट मुख हैं, बड़ही विशाल और भयको उत्पन्न करने वाले हैं ॥६॥

जेहि पर दह्यो हतेउ सुत तोरा ॐ सकल कपिन महँ तेहि बल थोरा ॥७॥
अमित नाम भट कठिन कराला ॐ विपुल वर्ण तन तेज विशाला ॥८॥

और जिस बंदर ने लंका जलाई अक्षयकुमार का बध किया वह बन्दर सबसे कम बलवान है ॥ ७ ॥ और बहुतसे बड़े बड़े नामी योधा हैं जिनके नाना रूप हैं और बड़ेही विशाल तेजस्वी शरीर हैं ॥ ८ ॥

दोहा—द्विविद मयंदरु नील नल, अंगदादि विकटाशि।
दधिमुख केहरि कुमुद गव, जामवंत बलराशि ॥५७॥

उनमें से मैं कुछ योधाओंके नाम वर्णन करता हूँ वे ये हैं—द्विविद, मयंद,

नील नल, अंगद विकटास्य, दधिमुख, केहरि, कुमुद गव और बल की राश जामवन्त इत्यादि ॥ ५७ ॥

ये कपि सब सुग्रीव समाना ॥ इन सम कोटिन गनै को नाना ॥१॥
राम कृपा अतुलित बल तिनहीं ॥ तृण समान त्रयलोकहिं गिनहीं ॥२॥

यह सब बन्दर राजा सुग्रीवके समान बलवान् हैं इनके समान और भी करोड़ों बन्दर हैं जिनकी गिनती नहीं हो सकती ॥१॥ श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे इन बन्दरोंमें अतुल बल है और यह सब बन्दर तीनों लोकोंको तिनके के समान समझते हैं ॥२॥

अस मैं श्रवण सुना दसकंधर ॥ पदुम अठारह यूथप बंदर ॥३॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं ॥ जो न तुमहिं जीतै रण माहीं ॥४॥

और हे नाथ! मैंने कानोंसे ऐसा सुना था कि अठारह पदुम बन्दरोंके सेनापति हैं ॥३॥ और उस सेनामें ऐसा कोई बन्दर नहीं जो तुम्हें युद्धमें न जीत सके अर्थात् सब बन्दर आपको हरा सकते हैं ॥ ४ ॥

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा ॥ आयसु पै न देहिं रघुनाथा ॥५॥
शोषहिं सिंधु सहित झष व्याला ॥ फारहिं नख धरि कुधर विशाला ॥६॥

वे सब वानर मारे क्रोध के हाथ मल रहे हैं । पछता रहे हैं) परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने अभी आज्ञा नहीं दी है ॥५॥ और वे समुद्रको सर्पों और मछलियों सहित सुखा सकते हैं और अपने नखोंसे बड़े बड़े विशाल पर्वतोंको फाड़ सकते हैं ॥६॥

मर्दि गर्द मिलवहिं दशशीशा ॥ ऐस वचन कहहिं सब कीशा ॥७॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज अशंका ॥ मानहुँ ग्रसन चहत अब लंका ॥८॥

सब बन्दर ऐसा कह रहे हैं कि हम रावणके दशों सिरोंको मल कर धूलमें मिला देंगे ॥७॥ और सहज ही में अशंक वानर गर्जन तर्जन करते हैं, ऐसा मालूम होता है कि वे अब लंकाको असना चाहते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—सहज शूर कपि भालु सब, पुनि शिर पर श्रीराम ।
रावण कोटिन काल कहँ, जीति सकहिं संग्राम ॥५८॥

हे रावण! सब रीछ बन्दर स्वभावहीसे बलवान् हैं परन्तु यह और भी अधिक बलवान् होनेका कारण है कि उनके सहायक श्रीरामचन्द्रजी साथ हैं, वे तो हे रावण! करोड़ों कालको संग्राममें जीत सकते हैं ॥ ५८ ॥

राम तेज बल बुधि विपुलाई ॥ शेष सहस शत सकहिं न गाई ॥१॥
सक शर एक शोषि सत सागर ॥ तव भ्रातहिं पूँछेउ नयनागर ॥२॥

रामचन्द्रजीके तेज, बल और बुद्धि की बड़ाईको तो लाखों शेषनागजी भी वर्णन

नहीं कर सकते ॥१॥ और श्रीरामचन्द्रजी एक बाणसे १०० समुद्र भी सुखा सकते हैं परन्तु नीति जाननेवाले भगवान् रामचन्द्रजीने आपके भाई से सलाह पूछी ॥२॥

तासु वचन सुनि सागर पाहीं ॥ माँगत पंथ कृपा मन माहीं ॥३॥
सुनत वचन बिहँसा दशशीशा ॥ जो अस मति सहाय कृत कीशा ॥४॥

सो तुम्हारे भाईकी सलाह मान करके श्रीरामचन्द्रजी समुद्रके पास बैठे हुए विनयपूर्वक रास्ता माँग रहे हैं क्योंकि वे बड़े दयालु हैं ॥३॥ शुक दैत्यके ऐसे वचन सुन रावण बहुत हँसा और कहने लगा कि जब ऐसी बुद्धि है तभी तो बन्दरोंको अपना सहायक बनाया है ॥ ४ ॥

सहज भीरु कर वचन दृढ़ाई ॥ सागर सन ठानी मचलाई ॥५॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई ॥ रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई ॥६॥

स्वभावहीसे डरपोक विभीषणके वचन मान कर समुद्रसे बालकोंकी सी हठ करके रामचन्द्र राह माँग रहे हैं ! ॥५॥ अरे मूर्ख ! तू व्यर्थ बड़ाई क्या करता है, वैरी के बुद्धि बलका हाल मुझे मालूम हो गया ॥ ६ ॥

सचिव सभीत विभीषण जाके ॥ विजय विभूति कहाँ लग ताके ॥७॥
सुनि खल वचन दूत रिस बाढ़ी ॥ समय विचारि पत्रिका काढ़ी ॥८॥

जिसके विभीषण सरीखे डरपोक मन्त्री हैं उसे जीतका यश कहाँ तक प्राप्त हो सकता है ॥७॥ रावणके ऐसे वचन सुन दूतको बड़ा क्रोध आगया, तब उसने अनुकूल समय जान कर लक्ष्मणजीकी चिट्ठी निकाली ॥ ८ ॥

राम अनुज दीन्ही यह पाती ॥ नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती ॥९॥
बिहँसि वाम कर लीन्हेसि रावन ॥ सचिव बोलि शठ लाग बचावन ॥१०॥

और कहा कि हे नाथ ! रामचन्द्रजी के छोटे भाईने यह चिट्ठी दी है सो इसे आप पढ़कर अपने हृदयको शीतल कीजिये ॥९॥ रावण ने हँसकर पत्र बायें हाथमें ले लिया और मन्त्रीको बुलाकर उसे पढ़वाने लगा ॥ १० ॥

दोहा—बातन मनहिं रिझाय शठ, जनि घालसि कुल खीश।
राम विरोध न उबरिहहु, शरण विष्णु अज ईश ॥५९॥

चिट्ठी में लिखा था कि हे मूर्ख ! तू बातों से अपने मनको प्रसन्न करके कुल का सत्यानाश न कर रामचन्द्रजी से विरोध करने पर ब्रह्मा विष्णु और महादेव की भी शरण जाने पर तुम बच नहीं सकते ॥ ५९ ॥

दोहा—होउ मान तजि अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होसि राम शर अनल खल, जनि कुल सहित पतंग ॥६०॥

इस कारण तुम भी अभिमानको छोड़कर अपने भाई विभीषणकी तरह भौंरा रूप होकर श्रीरामचन्द्रजीके कमल स्वरूपी चरणोंमें प्रेम करो, हे दुष्ट! रामचन्द्रजीके अग्नि रूप बाणसे तुम अपने कुल सहित पतंग रूप होकर नाश हो जानेका इरादा न करो

सुनत सभय मन महँ मुसुकाई ❀ कहत दशानन सबहिं सुनाई ॥१॥
भूमि परा कर गहत अकाशा ❀ लघु तापस कर बाग विलासा ॥२॥

पत्र सुनकर रावण मनमें तो डरा परन्तु हँसकर सबको सुनाकर इस प्रकार कहने लगा ॥१॥ कि उस छोटे तपस्वीके वचनोंकी चतुरता तो देखो, अरे! वह तो ऐसी आशा कर रहा जैसे कोई मनुष्य पृथ्वीपर पड़ा हुआ हो और आकाश छू लेनेकी आशा करे

कह शुक नाथ सत्य सब बानी ❀ समुझहु छाँड़ि प्रकृति अभिमानी ॥३॥
सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा ❀ नाथ राम सन तजहु विरोधा ॥४॥

तब शुक कहने लगा कि हे नाथ! पत्रकी सब बातें ठीक हैं, जरा आप अपने अभिमानी स्वभाव को छोड़ कर विचार तो करिये ॥ ३ ॥ क्रोध को छोड़ कर मेरा वचन सुनो। हे नाथ! रामचन्द्रजी से वैर त्याग दो ॥ ४ ॥

अति कोमल रघुवीर सुभाऊ ❀ यद्यपि अखिल लोककर राऊ ॥५॥
मिलत कृपा प्रभु तुम पर करिहैं ❀ उर अपराध न एको धरिहैं ॥६॥

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी सब लोकों के स्वामी हैं तब भी उनका स्वभाव बड़ाही कोमल है ॥ ५ ॥ वे मिलते ही तुम्हारे ऊपर बड़ी कृपा करेंगे और तुम्हारा कोई अपराध अप हृदय में नहीं रक्खेंगे अर्थात् तुम्हें क्षमा कर देंगे ॥ ६ ॥

जनक—सुता रघुनाथहि दीजै ❀ इतना कहा मोर प्रभु कीजै ॥७॥
जब तेहि देन कह्यो वैदेही ❀ चरण प्रहार कीन्ह शठ तेही ॥८॥

इसलिये हे नाथ! आप मेरा इतना कहना मानिये कि जानकीजी को श्रीरामचन्द्रजी को लौटा दीजिये ॥७॥ जब शुकने जानकी को लौटा देने की बात कही तो रावण ने उसके लात मारी ॥ ८ ॥

चरण नाइ शिर चला सो तहँवाँ ❀ कृपासिंधु रघुनायक जहँवा ॥९॥
करि प्रणाम निज कथा सुनाई ❀ राम कृपा अपनी गति पाई ॥१०॥

जब रावण ने लात मारी तो शुक भी उसे प्रणाम कर श्रीरामचन्द्रजी के पास चल दिया। और वहाँ पहुँच प्रभु को प्रणाम कर अपनी समस्त कथा कह सुनाई और रामचन्द्रजी की कृपा से अपनी गती को प्राप्त हुआ ॥ १० ॥

ऋषि अगस्त्य कर शाप भवानी ❀ राक्षस भयउ रहा मुनि ज्ञानी ॥११॥
वंदि राम पद बारहिं बारा ❀ मुनि निजआश्रमकहँ पगुधारा ॥१२॥

महादेवजी कहते हैं हे प्रिये ! यह शुक दैत्य बड़ाही ज्ञानी मुनि था परन्तु अगस्त्यऋषि के शाप के कारण राक्षस हो गया था ॥ ११ ॥ सो वह मुनि शरीर को प्राप्त होने पर रामचन्द्रजीके चरणों की बारम्बार वंदना करके फिर वह अपने आश्रम को चला गया ॥ १२ ॥

दोहा—विनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति ।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ॥ ६१ ॥

श्रीरामचन्द्रजी को प्रार्थना करते हुये तीन दिन बीत गये परन्तु मूर्ख समुद्र ने उस प्रार्थना पर कुछ ध्यान न दिया तब तो श्रीरामचन्द्रजी क्रोध में होकर बोले कि बिना भय के किसीको प्रीति नहीं उत्पन्न होती ॥ ६१ ॥

लक्ष्मण बाण शरासन आनू ॥ शोखैं वारिधि विशिष कृशानू ॥१॥
शठ सन विनय कुटिल सन प्रीती ॥ सहज कृपण सन सुन्दर नीती ॥२॥

हे लक्ष्मण ! धनुष और बाण लाओ, मैं इस समुद्र को बाण की अग्निसे सुखा डालूँगा ॥ १ ॥ क्योंकि मूर्ख मनुष्य से विनती करना, छली मनुष्य से प्रीति करना और स्वभाव ही से कंजूस मनुष्य से सुन्दर नीति वर्णन करना ॥ २ ॥

ममता रत सन ज्ञान कहानी ॥ अतिलोभी सन विरति बखानी ॥३॥
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि कथा ॥ ऊसर बीज बये फल यथा ॥४॥

और मोह में फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की बातें करना और बड़े भारी लोभी से वैराग्य (त्याग) की कथा कहना ॥ ३ ॥ क्रोधी मनुष्य को शान्ति का पाठ पढ़ाना कामी पुरुष से ईश्वरका गुणानुवाद गाना और ऊसर भूमिमें बीज बोना इन सबका फल व्यर्थ ही जाता है ॥ ४ ॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा ॥ यह मत लक्ष्मण के मन भावा ॥५॥
संधानेउ धनु विशिष कराला ॥ उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला ॥६॥

ऐसा कह कर श्रीरामचन्द्रजी ने धनुष चढ़ाया यह मत श्रीलक्ष्मणजी को अच्छा मालूम हुआ ॥ ५ ॥ और धनुष पर बड़ा कराल बाण संधान किया जिससे समुद्र के हृदय में बड़ी ज्वाला उत्पन्न हुई ॥ ६ ॥

मकर उरग झष गण अकुलाने ॥ जरत जन्तु जलनिधि जब जाने ॥७॥
कनक थार भरि मणि गण नाना ॥ विप्र रूप आयो तजि माना ॥८॥

और मगर साँप, मछलियाँ इत्यादि बहुत घबड़ाने लगीं, जब समुद्र ने इन जीवों को जलता हुआ देखा ॥ ७ ॥ तब सोने के थार में नाना प्रकार के मणि आदिक रत्न लेकर और अभिमान को छोड़ श्रीरामचन्द्रजी के पास ब्राह्मण का

रूप धर कर आया ॥ ८ ॥

दोहा—काटे पै कदली फरै, कोटि यतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेश सुनु, डाटेहि पै नव नीच ॥ ६२ ॥

काकभुशुण्डजी कहते हैं कि हे गरुड़जी ! केला काटने ही से फलता है चाहे कोई करोड़ों यत्न करके सींचे परन्तु नहीं फलता, इसी प्रकार नीच मनुष्य डाटनेही से दबता है विनय करने से नहीं ॥ ६२ ॥

सभय सिन्धु पद गहि प्रभु केरे ॐ छमहु नाथ सब अवगुण मेरे ॥१॥
गगन समीर अनल जल धरणी ॐ इनकी नाथ सहज जड़ करणी ॥२॥

समुद्रने भयसहित श्रीरामचन्द्रजीके चरण पकड़ कर विनती की कि हे नाथ ! मेरे सब अवगुण क्षमा करो ॥१॥ क्योंकि गगन, अग्नि, पवन, जल, पृथ्वी इनके तो कार्य स्वभावतः जड़ होते ही हैं ॥ २ ॥

तव प्रेरित माया उपजाये ॐ सृष्टि हेतु सब ग्रन्थन गाये ॥३॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई ॐ सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ॥४॥

हे नाथ ! सब ग्रन्थोंमें ऐसा प्रसिद्ध है कि आपकी प्रेरणासे ये वस्तुयें मायाने सृष्टिके हेतु उत्पन्न की हैं ॥ ३ ॥ और जिसको आपकी जैसी आज्ञा है वह उसी प्रकार रहनेसे सुख पा सकता है अन्यथा नहीं ॥ ४ ॥

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं ॐ मर्यादा पुनि तुम्हरी कीन्हीं ॥५॥
ढोल गँवार शूद्र पशु नारी ॐ ये सब ताड़न के अधिकारी ॥६॥

हे नाथ ! आपने जो मुझे शिक्षा दी सो तो अच्छाही किया परन्तु यह मर्यादा आपही की बाँधी हुई है ॥ ५ ॥ ढोल, गँवार शूद्र, पशु और स्त्री ये सब ताड़ना ही के अधिकारी हैं अर्थात ताड़नेही पर ठीक रहते हैं ॥ ६ ॥

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई ॐ उतरहि कटक न मोरि बड़ाई ॥७॥
प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई ॐ करहु बेगि जो तुमहि सुहाई ॥८॥

हे नाथ ! यदि मैं आप के प्रताप से सूख जाऊँ और आपकी सेना पार उतर जावे तो इसमें मेरी मर्यादा जाती रहेगी ॥ ७ ॥ और वेदों में कहा है कि आपकी आज्ञा अटल है, इस कारण जो आपको अच्छा लगे सो शीघ्र कीजिये ॥ ८ ॥

दोहा—सुनतहि वचन विनीत अति, कह कृपालु मुसुकाय।
जेहि विधि उतरहि कपि कटक, तात सो कहहु उपाय ॥ ६३ ॥

ऐसे नम्रता से भरे हुए वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी ने हँस कर समुद्र से कहा कि हे तात ! जिस प्रकारसे यह बन्दरोंकी सेना समुद्रके पार जाय वह उपाय बतलाओ

नाथ नील नल कपि दोउ भाई ॥ लरिकाई ऋषि आशिश पाई ॥१॥

तब समुद्र कहने लगा कि हे नाथ ! नल नील जो दो भाई हैं उन्होंने लड़कपन में ऋषि का आशीर्वाद पाया है सो इस प्रकार है ॥ १ ॥

अथ क्षेपक

सरिता निकट रहे मुनि छाई ॥ करहिं उपद्रव तहँ दोउ भाई ॥१॥
आँख मूँदि मुनि ध्यान लगावैं ॥ तब प ठाकुर को लै जावैं ॥२॥

किसी नदीके किनारे कोई मुनि रहते थे, वहाँ यह दोनों भाई नल और नील बड़ा उपद्रव करते थे ॥ १ ॥ सो इस प्रकार कि जब वे आँख बन्द कर अपने इष्टदेव का ध्यान लगाते थे उसी समय ये ठाकुरजीको चुरा ले जाते थे ॥ २॥

सो जल में सब देहिं बहाई ॥ तब मुनि शाप दियो रिसिआई ॥३॥
वस्तु तुम्हारि छुई जो होई ॥ पानी पै उतरावै सोई ॥४॥
स्थिर तहँ रहे चलै सो नाहीं ॥ तब ये कछु समुझे मन माहीं ॥५॥

और उन्हें जलमें डाल देते थे जिससे मुनि लोगों को बड़ा कष्ट पहुँचता था, तब मुनिने क्रोधित होकर शाप दे दिया ॥३॥ कि जो वस्तु तुम्हारी छुई होगी वह पानी पर उतरायगी ॥ ४ ॥ और स्थिर रहेगा चलेगी भी नहीं. तब इनके हृदय में कुछ चेत हुआ ॥५॥

इति क्षेपक ।

तिनके परस किये गिरि भारे ॥ तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥२॥

उन नल नील के छूये हुए बड़े बड़े भारी पर्वत आपके प्रताप से समुद्र पर तैरनेलगेंगे

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई ॥ करिहौं बल अनुमान सहाई ॥३॥
यहि विधि नाथ पयोधि बँधाइय ॥ जेहि यह सुयश लोक तिहुँ गाइय ॥४॥

और मैं भी आपके प्रताप को हृदय में धारण कर अपने बल के अनुसार सहायता करूँगा ॥३॥ सो हे नाथ ! इस प्रकार से आप समुद्र में पुल बँधवाइये जिससे आप की यह सुकीर्ति तीनों लोकों में विदित हो और गाई जाय ॥ ४ ॥

यहि शर मम उत्तर तट बासी ॥ हतहु नाथ खल गण अघरासी ॥५॥
सुनि कृपालु सागर मन पीरा ॥ तुरतहि हरी राम रण धीरा ॥६॥

और इस बाण से (जो कि आपने धनुष पर चढ़ाया है) मेरे उत्तर दिशा के निवासी जो कि दुष्ट और पापों की राशि हैं इनका संहार कीजिये ॥५॥ कृपालु श्रीरामचन्द्रजी ने यह सुन कर समुद्र के हृदय की पीड़ा उसी समय दूर करदी ॥६॥

देखि राम बल अतुलित भारी ॥ हर्षि पयोनिधि भया सुखारी ॥७॥

सकल चरित क... ...ध सिधावा ॥८॥

समुद्र श्रीरामचन्द्रजी के ऐसे अतुल पराक्रम को देखकर बड़ा ही प्रसन्न और सुखी हुआ ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी को सब हाल सुनाकर और चरणों की वंदना कर समुद्र चला गया ॥ ८ ॥

छन्द-निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहिं यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मल हरण जस मति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संशय दमन शमन विषाद रघुपति गुन गना।
तजि आस सकल भरोस गावहिं सुनहिं सज्जन शुचिमना॥

समुद्र अपने स्थान को चला गया और रामचन्द्रजी को यह मत बहुत अच्छा लगा। सुख के घर संशय के दूर करने वाले दुख के नाश करने वाले कलिकाल के मल को दूर करने वाले श्रीरामचन्द्रजी के इन गुणानुवादों को श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी मतिके अनुसार वर्णन किया सो जो सज्जन सब आसाओं को त्याग कर इन गुणानुवादों को गाते अथवा सुनते रहते हैं तो वे बड़े सुख को प्राप्त होते हैं

दोहा—सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुण गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलयान॥६४॥

श्रीरामचन्द्रजी का गुणानुवाद सब सुखोंको देनेवाला है जो लोग आदर सहित इसे सुनते हैं वे सब भवसागर से बिना नौका के पार हो जाते हैं ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानसे (रामायणे)
सकल कलिकलुषविध्वंसने विमल वैराग्यसंतोष
संपादनोनाम सुन्दरकांडः पंचमः सोपानः समाप्तः ॥५॥

दोहा—खीरी जिला लखीमपुर, सीताराम सुधाम।
सुंदर की टीका लिखी, संतजीवनो नाम ॥५॥